NAGRI PRCHARNI PATRIKA 1914 G.K.V.

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १९ | मई और जून, १९१४. | संख्या ११—१२

बाल-शिक्षा।

साधारण समस्या।

शिक्षा का अरंभ जन्म से ही होना चाहिए।

इस समय जितने सामाजिक परिवर्त्तन अभीष्ट हैं यदि किसी उपाय से वे सब परिवर्त्तन हो जायँ तो भी हमारा उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा; क्योंकि जब तक पुरुषों और स्त्रियों को भली भाँति योग्य न बना लिया जायगा तब तक वे उच्च आदर्श के अनुकूल नहीं हो सकेंगे और फल यह होगा कि समाज जल्दी जल्दी अवनत हो जायगा। इस प्रकार कृत्रिम उपाय से जो कार्य्य सिद्ध होगा वह आचरण, स्वभाव और संगति के कारण बुरी तरह नष्ट हो जायगा।

यदि आरंभ में शिक्षा की ओर ध्यान न दिया जाय तो उससे होनेवाली क्षति की कभी पूर्त्ति नहीं हो सकती; और इसी कारण बड़े होने पर उसके लिए जो उद्योग होंगे उनका परिणाम उलटा होगा। यह बात अनुभव से सिद्ध है। जिस मनुष्य का स्वास्थ्य युवावस्था में बिगड़ जाता है वह आजन्म उसका दुष्परिणाम भोगता रहता है—अपने शरीर की रक्षा के लिए अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी उसे कोई लाभ नहीं होता। स्वच्छ वायु में रहने, उत्तम और सुपाच्य भोजन करने और यथेष्ट व्यायाम करने पर भी वह प्रायः कोमल और रोगी बना रहता है। पर एक हट्टा कट्टा आदमी किसी प्रकार का संयम न करने पर भी बहुत कम बीमार होता है। इसी लिए कुछ लोग अधिक संयम को बिलकुल व्यर्थ समझते हैं। इसलिए पुरुष या स्त्री के वयस्क होने के समय तक उसका नैतिक आचरण दृढ़ हो जाना चाहिए; नहीं तो आगे चलकर बहुत अधिक प्रयत्न का बहुत थोड़ा फल होगा और थोड़े प्रयत्न का कुछ भी फल न होगा। इस विषय में नैतिक आचरण स्वतंत्र नहीं, वरन् मानवी प्रकृति का अनुगामी है। इन सब बातों से यही तात्पर्य्य निकलता है कि सदाचार की शिक्षा की आवश्यकता जन्म से ही होती है।

बालकों को शिक्षा देते समय अपने उद्देश्य, परिस्थिति और साधन आदि का ध्यान रखना चाहिए और बीच में उपस्थित होनेवाले नैतिक प्रश्नों का निराकरण करते जाना चाहिए।

शिक्षा व्यवस्थित होनी चाहिए।

अव्यवस्थित शिक्षा का फल कभी अच्छा नहीं होता। जब तक किसी रोग की चिकित्सा लगकर न की जाय तब तक वह नष्ट नहीं हो सकता। आपकी कल्पनाएँ चाहे कितनी ही अच्छी क्यों न हों पर जब तक उनका ठीक और पूरा उपयोग न किया जाय तब तक उनका कोई फल नहीं हो सकता। जब तक ठीक ढंग से और पूरी तरह बालकों को शिक्षा न दी जाय तब तक उत्तम और निकृष्ट कल्पनाओं का फल समान ही होता है। उद्देश्य-रहित शिक्षा बहुत ही दुःखदायी होती है। इस प्रकार जब बालक बिगड़ जाते हैं तब माता-पिता दिक़ होकर उनकी ओर ध्यान देना छोड़ देते हैं। फल यह होता है कि बालक बहुत जल्दी खराब हो जाते हैं और उनसे माता-पिता को असह्य कष्ट मिलता है; साथ ही उचित ध्यान और निरीक्षण के अभाव के कारण बालक भी प्रायः दुखी रहते हैं। पर यदि युक्ति-युक्त प्रणाली से बालकों की शिक्षा का पूरा पूरा प्रबंध किया जाय तो इन कठिनाइयों से बहुत रक्षा रहती है।

यदि इस नीति का अवलंबन किया जाय तो केवल आरंभ में ही बहुत सी कठिनाइयाँ होती हैं और तरद्दुद उठाना पड़ता है। पर इस तरद्दुद उठाने और अपने या पराए बालकों के संबंध में अनुभव प्राप्त करने से अंत में उद्देश्य-सिद्धि हो ही जाती है। ये कठिनाइयाँ केवल आरंभ में ही होंगी और आगे चल कर आपके बालक सुधर जायँगे; और तब आपको बहुत ही कम चिंता रह जायगी। इतना होने पर भी यदि बालकों में कोई अनुचित बात रह जाय तो उसके लिए शांत रहना चाहिए क्योंकि बालकों की स्वाभाविक चंचलता रोकना ठीक नहीं है।

दम्पति को इस बात का निर्णय कर लेना चाहिए कि वे अपने बालकों को किस प्रकार की शिक्षा देना चाहते हैं और साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षा का आरंभ जन्म से ही होना उचित है। प्रायः लोग इन बातों का ध्यान नहीं रखते। बालक के जन्म लेने पर माता-पिता को कौतूहल सा होता है और अनिश्चित परिपाटी और विचारों से उनकी शिक्षा आरंभ होती है।

शिक्षा का एक निश्चित उद्देश्य होना चाहिए।

इस कौतूहल के अतिरिक्त लोगों में प्रायः तीन बातें और होती हैं। एक तो यह कि लोग बालक को खिलौना या आमोद प्रमोद का साधन मात्र समझते हैं। जिस प्रकार लोग तमाशा देखने के लिए बंदर के हाथ में शीशा देते हैं उसी प्रकार बालकों का विनोद देखने के लिए लोग उन्हें खराब करते हैं। यदि परिणाम के साथ साथ इस बात का भी ध्यान रक्खा जाय कि बालक पर इन कृत्यों का क्या प्रभाव पड़ता है तो थोड़े से निर्दोष विनोद से कोई हानि नहीं हो सकती। पर जब बालक से सदा इसी प्रकार विनोद किया जाय तो वह अवश्य अनुचित और हानिकारक है।

दूसरी बात यह है कि बालक को लोग दया का पात्र और क्षम्य समझते हैं। उसकी दीनता देख कर दया उत्पन्न होती है और इसी लिए लोग उसे बिना कुछ कहे सुने छोड़ देते हैं। इस प्रकार की दया और उदारता से बालक की बहुत अधिक हानि होती है। नैतिक दृष्टि से इसका परिणाम बहुत ही भयंकर होता है।

तीसरे माता पिता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि केवल चंचलता या रोने चिल्लाने के कारण बालकों को मारना या बुरा भला कहना बहुत अनुचित है। उन्हें बालकों की चंचलता या रोने चिल्लाने का कारण देखना चाहिए।

बालकों की शिक्षा के संबंध में माता पिता के उद्देश्य इस प्रकार होने चाहिएं।

(क) ज्ञानयुक्त अनुराग से काम लेना चाहिए।

(ख) सुजनता और मृदुलता को कभी हाथ से न जाने देना चाहिए।

(ग) उन्नतिशील और उच्च, व्यक्तिगत तथा सामाजिक आदर्श को अपना पथ-दर्शक बनाना चाहिए। और

(घ) इस आदर्श का दृढ़ता, प्रेम, शांति, प्रसन्नता और दूरदर्शिता पूर्वक संपादन करना चाहिए।

शिक्षक।

इधर कई शताब्दियों से भारत में शिक्षा और शिक्षकों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। साधारणतः बहुत ही थोड़ी योग्यता वाले "गुरु" बालकों को थोड़ा बहुत पहाड़ा पढ़ा देते हैं और उन्हें अक्षर पहचानना सिखला देते हैं। इधर जब से पाश्चात्य शिक्षा का प्रबंध हुआ है तब से इस देश में शिक्षा की स्थिति बहुत कुछ बदल गई है। पर तो भी यह स्थिति सभ्य देशों के शिक्षा-प्रबंध के सामने एक दम अपूर्ण, बल्कि प्रायः नहीं के समान है। यूरोप में कहीं कहीं तो इतना दृढ़ नियम है कि प्रत्येक मनुष्य को शिक्षक का कार्य्य आरंभ करने से पहले कुछ निश्चित समय तक किसी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। पर हमारा देश शिक्षा में बहुत ही पिछड़ा हुआ है। प्रायः सभ्य देशों में यह प्रथा है कि बालक को किसी विद्यालय में भेजने से पहले, बहुत ही छोटी अवस्था में किसी अध्यापिका के सुपुर्द कर दिया जाता है। पर हमारे देश में कम से कम पाँच छः वर्ष की अवस्था तक बालकों की शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं किया जाता।

हमारे देश में माताएं अशिक्षिता ही रहती हैं। इसमें संदेह नहीं कि उच्च शिक्षा से स्त्रियों की कोमल प्रकृति बिगड़ कर कठोर हो जाती है। राजनैतिक आदि झगड़ों में पड़ना या जीविका उपार्जन के लिए परिश्रम करना स्त्रियों का काम नहीं है। उन्हें केवल गृहस्थी का प्रबंध और बालकों का पालन पोषण करना चाहिए। पर तो भी स्त्रियों के लिए इतनी शिक्षा और जानकारी की अवश्य आवश्यकता है जिससे वे बालकों को आरंभ से ही कुछ आवश्यक बातों का यथेष्ट ज्ञान करा सकें। पिता को बालक की देख रेख का बहुत ही कम अवसर मिलता है और इसी लिए यह कर्त्तव्य प्रधानतः माता का समझा जाता है।

आजकल जिस ढंगपर बालकों को शिक्षा दी जाती है उससे उनकी विचार, स्मृति और अनुमान-शक्ति नहीं बढ़ने पाती। उन्हें शिक्षा देते समय किसी उच्च आदर्श पर लक्ष्य नहीं रक्खा जाता, केवल एक लकीर सी पीटी जाती है। बालकों पर माता की ममता बहुत अधिक होती है। पर यदि इसमें शिक्षा और अनुभव भी सम्मिलित हो तो वह बहुत अधिक उत्तम और बलवती हो जाती है। सबसे पहली बात तो यह है कि माता-पिता को स्वयं शिक्षित होना चाहिए, दूसरे उन्हें संसार का अनुभव होना चाहिए। उनमें बालकों को घर पर ही उत्तम शिक्षा देने की योग्यता होनी चाहिए। तीसरे जिन लोगों पर उनकी शिक्षा का भार सौंपा जाय, उन्हें शिक्षण के काम में पूरा दक्ष होना चाहिए।

माता-पिता और शिक्षकों में अभेद।

यदि विद्यालयों के अध्यापक पढ़ाने के काम में भली भांति शिक्षित हों तो बीच बीच में उनके परिवर्त्तन से कोई हानि नहीं हो सकती। जिस विद्यालय के सभी अध्यापक सुयोग्य हों वहाँ उन अध्यापकों में आकृति आदि के अतिरिक्त और किसी प्रकार का भेद नहीं पाया जाता। इसी प्रकार यदि माता पिता और बालकों को आरंभिक शिक्षा देनेवाले गृह-शिक्षा-शास्त्र से भली भांति अभिज्ञ हों तो कोई हानि नहीं हो सकती। पर अभाग्यवश स्थिति इससे विपरीत ही होती है। उन सबके विचार आदि सदा एक दूसरे से बहुत भिन्न होते हैं। इससे हानि यह होती है कि बालक के सामने भिन्न भिन्न प्रकार के आदर्श उपस्थित होते हैं जिनमें प्रायः परिवर्त्तन

होते रहने के कारण और भी गड़बड़ होती है। इसलिए माता-पिता को इस कठिनाई का ध्यान रखना चाहिए और यथासाध्य इसे दूर करना चाहिए। सब से अधिक उत्तम यह है कि माता-पिता मिल कर अपने बालकों की शिक्षा और उसकी प्रणाली का एक उपयुक्त नियम निर्द्धारित कर लें। इस प्रकार दाम्पत्य संबंध में भी बहुत कुछ उपकार हो सकता है।

बड़े और छोटे बालक।

जिन लोगों को केवल एक ही संतान हो, उनकी कम से कम एक कठिनता तो अवश्य दूर हो जाती है। हां, बालक की यह हानि अवश्य होती है कि उसे समवयस्क साथी नहीं मिलते। पर जिन लोगों को कई संतानें होती हैं उन्हें यह कठिनता होती है कि प्रायः बालक एक दूसरे का अनुकरण करने लग जाते हैं।

बालकों का यह अनुकरण, विशेषतः उनकी प्रारम्भिक अवस्था में बहुत ही चित्ताकर्षक होता है। बहुत छोटा बालक, जहाँ तक हो सकता है, अपने से बरस दो बरस बड़े बालक का सब बातों में अनुकरण करता है। पाँच बरस की अवस्था तक छोटे बालक के आचार विचार आदि इसी प्रकार के अनुकरण से पुष्ट होते रहते हैं; पर इसके बाद उसकी वह अनुकरण-शीलता जाती रहती है।

बालक एक दूसरे को जो कुछ करते देखते हैं वही स्वयं भी करने लग जाते हैं। यदि आप अपनी सबसे बड़ी संतान को उचित और योग्य शिक्षा दे सकें तो फिर आपको बहुत ही थोड़ा परिश्रम करने की आवश्यकता रह जायगी। बड़ा बालक स्वयं ही शेष छोटे बालकों को शिक्षा दे लेगा और उनके सामने अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करेगा। इसलिए प्रथम बालक की शिक्षा आदि पर बहुत अधिक ध्यान देना चाहिए क्योंकि उसके छोटे भाई बहनों पर उसके आचरण का बहुत अधिक प्रभाव पड़ेगा। वास्तव में पहले और सब से बड़े बालक को दूसरों का पथ-दर्शक बनाने के योग्य शिक्षा देनी चाहिए और उन्हें उत्तरदायित्व और सद्गुणों का ज्ञान प्राप्त कराना चाहिये। यदि इस कार्य्य में आप कृतकार्य्य हो गए तो इससे आप और आपके छोटे बालकों का बहुत अधिक उपकार होगा और आपके सब से बड़े बालक में बहुत ही प्रबल नैतिक और मानसिक-शक्ति आ जायगी। इसलिए आपको सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आपका सब से बड़ा बालक दूसरों के लिए शिक्षक और आदर्श हो।

पर यदि आप इसमें कृतकार्य न हो सके तो आपको दूसरी कठिनता यह होगी कि बड़े बालक के दोष शेष छोटे बालकों के लिए अनुकरणीय हो जायँगे। यदि एक बालक उँगलियाँ चटकाता हो, मुँह बनाता हो, धूल में लोटता हो, उत्पात करता हो, कहना न मानता हो, तो उसकी देखादेखी दूसरे बालक भी उँगलियाँ चटकाने, मुँह बनाने, धूल में लोटने, उत्पात करने और आज्ञा की अवज्ञा करने लग जायँगे। इस प्रकार उनकी सभी बातें बिगड़ जायँगी। पहले आपको केवल एक ही बालक के जो दोष दूर करने पड़ते वह अब सब बालकों के दूर करने पड़ेंगे। इसलिए ज्यों ही किसी बालक में कोई दोष दिखलाई दे त्यों ही उसे जिस प्रकार हो सके दूर करना चाहिए और दूसरे बालकों में उसे फैलने न देना चाहिए।

कई बालकों के पालन पोषण में भी कुछ कठिनता होती है। बात यह है कि बालक सदा एक दूसरे के साथ रहने में सदा प्रसन्न रहते हैं और स्वभावतः उन्हें आचार-विचार की उत्तमता का बहुत थोड़ा ध्यान रहता है। इसलिए अवसर पा कर बिलकुल अनजान में वे अपने चरित्र और विचार बिगाड़ लेते हैं। यदि उन लोगों को कोई अनुचित बात न सिखलाई जाय तो वे कभी उजड्ड, झूठे या स्वार्थी न होंगे। जो माता-पिता अपना यह कर्त्तव्य पालन कर चुकते हैं उन्हें अपने बालकों के आचरण के कारण कभी कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

इसलिए आपका एक काम यह है कि आप अपने बड़े

बालक के सामने, अनुकरण करने के लिए, बहुत ही उत्तम और उच्च आदर्श उपस्थित करें ।

दोषों का निवारण और दंड आदि ।

यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो बालक स्वयं कोई अनुचित कार्य्य नहीं करते । इसलिए उनके कृत्यों के लिए किसी प्रकार का दंड या पुरस्कार निरर्थक होता है ।

यदि बालक कोई अनुचित कार्य्य करे तो आप को ज़रा भी क्रोध या दुःख न करना चाहिए, क्योंकि बालक उस कार्य्य को अनुचित समझ कर नहीं करता । यद्यपि इस सिद्धांत को समझते हुए इस प्रकार का व्यवहार करने में आपको कुछ कठिनता होगी, तथापि यदि आप इस बात का दृढ़ विश्वास रक्खेंगे कि आपके बालक निर्दोष हैं, तो समय पाकर आप यह भी समझ जायँगे कि वास्तव में उन्हें कोई अनुचित कार्य्य करना अभीष्ट नहीं होता ।

आप यह कह सकते हैं कि यद्यपि बालक जान बूझ कर कोई अनुचित कार्य्य नहीं करते तो भी यदि उनपर डाँट डपट रक्खी जाय और अनुचित कार्य्यों के लिए उन्हें दंड दिया जाय तो वे अच्छे कार्य्यों की ओर प्रवृत्त होंगे । कुछ लोगों का यह सिद्धांत है कि शिक्षा आदि में कड़ाई से काम लेना चाहिए । पर यदि विचार-दृष्टि से देखा जाय तो मालूम हो जायगा कि इससे शिक्षक में पाशव वृत्ति की वृद्धि होती है । इसलिए बालकों, सेवकों, अपराधियों, पागलों और पशुओं तथा अन्य सबों से किसी प्रकार की कड़ाई का व्यवहार करना अनुचित, दूषित, व्यर्थ और त्याज्य है । जो लोग इस सिद्धांत का अनुकरण नहीं करते वे दोषों की निवृत्ति तो कर नहीं सकते, हाँ, अपने दंडों को अधिक प्रभावकारक बनाने के लिए दिन पर दिन कड़ा अवश्य करते जाते हैं जिससे उनमें पाशव और क्रूर वृत्ति बढ़ती जाती है और उनका नैतिक आचरण दूषित होता जाता है । आपको अपने निज के और दूसरों के अनुभव से यह बात मालूम हो जायगी कि पुरस्कार और दंड-युक्त शिक्षा-प्रणाली जितनी प्रशंसनीय है उतनी ही निंद्य भी है ।

वर्त्तमान अनुभव हम लोगों को यह बात बतलाता है कि प्रत्येक कार्य्य नम्र बनने से जितनी सरलतापूर्वक निकल सकता है उतनी सरलतापूर्वक उग्र होने से नहीं निकलता । यदि किसी से कोई कार्य्य, आज्ञा के रूप में, करने के लिए कहा जाय तो वह उसपर कभी उचित ध्यान न देगा । पर यदि वही कार्य्य करने के लिए उससे प्रार्थना रूप में, या कम से कम नम्रतापूर्वक कहा जाय तो वह उसे बहुत प्रसन्नतापूर्वक और शीघ्र कर देगा । छोटे, बड़े सबसे काम लेने में जितनी अधिक सहायता नम्रता और दया से मिलती है उतनी अधिक क्रोध या धमकी से नहीं । यह एक साधारण नियम है कि यदि किसी को कोई काम करने से मना किया जाय तो किसी न किसी रूप में उस काम के करने की उसकी प्रबल इच्छा होती है । पर नम्रता-पूर्वक की हुई प्रार्थना अस्वीकार करने में मनुष्य को लज्जा आती है ।

आपको सदा यही समझना चाहिए कि आपके लड़के वाले आपके शिष्य हैं और जितनी कठिनता और धीरता से उन्हें पाठ का अभ्यास कराया जाता है उतनी ही कठिनता और धीरता से उन्हें आचार व्यवहार आदि भी सिखलाने की आवश्यकता है । इसलिए आपको एक शिक्षक की भाँति दूरदर्शक होना चाहिए और सदा अपने आपको वश में रखना चाहिए क्योंकि आप के और शिक्षक के कर्त्तव्य समान ही हैं ।

बालकों के साथ सदा प्रेम का व्यवहार करके उन्हें प्रसन्न रखना चाहिए और उनका मिजाज कभी बिगड़ने न देना चाहिए । केवल प्रेम का व्यवहार ही आपसे बालकों के साथ उचित न्याय करा सकता है और इसके अभाव में शेष सारे प्रयत्न मिट्टी हो जाते हैं ।

बालकों पर प्रसन्नता का वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा वनस्पति पर सूर्य्य का । यदि आप उन्हें प्रसन्न रखेंगे तो उनकी शारीरिक अवस्था सर्वोत्तम

रहेगी, उनकी शिक्षा सर्वोत्तम होगी और उनके व्यवहार भी सर्वोत्तम होंगे।

बालकों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि जो कार्य्य उन्हें कोमल वचनों और प्रार्थना रूप में कहा जाय उसे वे तुरंत कर दें। ऐसी दशा में उस अवसर पर बड़ा आनंद आता है जब कि कोई व्यक्ति उनसे कोई कार्य्य करने के लिए साधारण शब्दों अथवा आज्ञा के रूप में बार बार कहता है और उनके न करने पर आश्चर्य्य से उनका मुँह ताकता है। साथ ही बालकों को इस बात की भी शिक्षा देनी चाहिए कि जिस कार्य्य के लिए उनसे कोमल वचनों में कहा जाय, उसके विषय में वे उत्तर दें कि—"मैं प्रसन्नता से यह कार्य्य कर दूँगा।" ऐसी बातें उन्हें भली भांति याद कराने के लिए बार बार उनसे अनेक कार्य्य करने के लिए कहना उनके लिए बहुत अच्छा खेल हो जायगा और इससे वे काम अवश्य और बहुत प्रसन्नता पूर्वक करेंगे।

कोमल शब्दों में समझाने और सदा उचित ध्यान रखने से बालकों के अनुचित और दूषित अभ्यास बड़ी सरलता से दूर किए जा सकते हैं। कड़ाई या दलील करने से उनके दूषित अभ्यास नहीं छूट सकते। उन्हें सब बातें प्रसन्नचित्त होकर और मुलायमियत से समझानी चाहिएँ। बालकों से कभी किसी विषय में दलील न करनी चाहिए। उन्हें यह भी सिखला देना चाहिए कि यदि कर्कश स्वर में उनसे कोई कार्य्य करने के लिए कहा जाय तो वे उसपर ध्यान न दें।

बालकों को अपने इष्ट पथ पर लाने और यथेच्छ कार्य्य कराने में उनके कल्पित सुंदर नए नाम रखने से बहुत सहायता मिलती है। यदि चार बरस की किसी बालिका से यह कहा जाय कि—"यदि तुम दिन भर न रोओगी तो संध्या समय तुम्हारा नाम "मोती" रखा जायगा, कल दिन भर न रोओगी तो "पन्ना" कहलाओगी और इसी प्रकार एक सप्ताह बीत जाने पर तुम्हें लोग "हीरा" कहेंगे और तब तुम्हें बाग में घुमाने ले चलेंगे और बढ़िया खिलौना ला देंगे।" और इस प्रकार बीच बीच में ध्यान दिलाया जाय तो वह तो रोना छोड़ही देगी साथ ही पाँच बरस का उसका बड़ा भाई भी रोना चिल्लाना छोड़ देगा। बालकों के इस प्रकार नाम रखने में उनकी भी स्वीकृति ले लेनी चाहिए।

इस प्रकार की गृह शिक्षा में निश्चित मर्य्यादा के अभाव के कारण भी बहुत से दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

सम्भव है कि बार बार इस प्रकार की प्रार्थना सुनते सुनते बालकों को उसके समझने या तदनुसार कार्य्य करने में कठिनता हो; इसलिए वे सब कुछ सुन कर भी आपका मुँह ताकते रह जाँय। इसलिए आपको मर्य्यादाबद्ध रहना चाहिए।

(क) आवश्यकतानुसार प्रत्येक कार्य्य के लिए कुछ समय नियत कर दो। हर एक काम के लिए उन्हें दो चार या दस मिनट का समय देने से वे बहुत प्रसन्नतापूर्वक निश्चित समय के अंदर कार्य्य कर देंगे। कोई काम कराना हो तो "एक, दो, तीन" कहो, बालक बहुत प्रसन्न होंगे। आगे चल कर यह अवकाश कम कर दो, केवल "एक, दो" कहो, तदुपरांत और भी कम करके केवल "एक" कहो और फिर सब से अंत में इतना कहने की भी आवश्यकता न रह जायगी। अंतिम 'तीन' या 'दो' कहने में शीघ्रता न करनी चाहिए और बालक को कार्य्य समाप्त करने के लिए यथेष्ट समय देना चाहिए। इसी प्रकार उनसे यह भी कहा जा सकता है कि दो, चार या पाँच मिनट तक बिलकुल चुपचाप और शांत रहो और तदुपरांत पाँच मिनट तक भद्रोचित बातें करो। इसी प्रकार के और भी बहुत से नियम हो सकते हैं जिनका पालन बालक तुरंत और बड़ी प्रसन्नता से करेंगे।

(ख) इसी प्रकार कोई बुरा सभ्यास छुड़ाने या अच्छा अभ्यास डालने में भी कुछ उपयुक्त समय निश्चित कर देना बहुत आवश्यक और लाभदायक होता है। बिना इस नियम का पालन किए बहुत समय तक भी कोई फल नहीं होता। बालकों के चौके में बैठने, स्वच्छतापूर्वक भोजन करने और

बिना भोजन किए न उठने की बात ही लीजिए। ऐसा अभ्यास डालने के लिए बालकों को कम से कम एक सप्ताह का समय दिया जाना चाहिए और इस अवसर में आपको बीच बीच में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि उन्हें इस उद्योग में कहाँ तक सफलता होती है। बिलकुल आरंभ में सब कामों पर आपको पूरा पूरा ध्यान रखना पड़ेगा और बीच बीच में उन्हें आदत सुधारने के लिए दिए हुए समय का स्मरण भी दिलाना पड़ेगा। पर फिर चार पाँच दिनों बाद आपको ऐसा करने की आवश्यकता न पड़ेगी।

प्रत्येक भूल, पूर्णतः या अंशतः, अज्ञानता के कारण ही होती है। यदि आप उन्हें बराबर बतलाते जांय तो वे बहुत शीघ्र पटरे या आसन पर बैठना और ग्रास उठाना आदि सीख जायँगे। हां, आपको शिक्षक की भांति उन्हें प्रत्येक बात समझाने और सिखलाने में भारी कठिनता अवश्य होगी। ऐसी दशा में आपको अधीर न हो जाना चाहिए क्योंकि बालक यह नहीं जानते कि आप उनसे क्या चाहते अथवा क्या आशा रखते हैं। इसका कारण यह है कि या तो बालक उन बातों को भली भांति समझते नहीं या शीघ्र भूल जाते हैं। प्रत्येक नया अभ्यास डालने के लिए बालकों को अपना पुराना अभ्यास भुलाना पड़ता है। एक अभ्यास डालने का अर्थ, साधारणतः दूसरा अभ्यास दूर कर देना ही है।

यदि इस प्रकार किसी अनुचित अभ्यास को दूर करने के लिए बालकों को थोड़ा निश्चित समय न दिया जाय तो वह अभ्यास महीनों बल्कि बरसों तक पड़ा रहेगा। इस नियम के पालन का प्रभाव विद्युत् की भांति होता है और इससे आपकी कठिनाइयाँ तुरंत और सदा के लिए दूर हो जाती हैं। पर यदि ऐसा न किया जाय तो दिन पर दिन बुरे अभ्यास बढ़ते जायँगे और प्रायः व्यर्थ डाँटते डपटते और मना करते करते अंत में आप थक कर निराश हो जायँगे और बालकों के आचार व्यवहार आदि सदा के लिए बिगड़ जायँगे। बुद्धिमान माता-पिता, एक एक करके, सब आनेवाली कठिनाइयों को दूर कर लेते हैं।

(ग) अपने उद्योग में सफलता प्राप्त करने के लिए यह भी आवश्यक है कि आप बालकों से एक बार में व्यवहार आदि के संबंध में केवल एक या दो चार सुधार ही करने के लिए कहें। एक ही सप्ताह में सारे आचरण सुधारने के लिए कहना, अथवा ऐसे कार्य्य कराने का उद्योग करना जो बालकों की शक्ति के बाहर हों, सदा निरर्थक और निराशाजनक होता है। इसलिए एक सप्ताह में केवल एक या दो अभ्यास ही सुधारने का प्रयत्न होना चाहिए और शेष अभ्यासों को भविष्य में सुधारने के लिए छोड़ देना चाहिए।

बालकों से सदा बहुत कम बातें कहनी चाहिएं कि जिसमें वे उसपर यथेष्ट ध्यान दें। कोई बात ऐसी नहीं कहनी चाहिए जिसकी तह में और भी अनेक बातें हों। एक अच्छे शिक्षक की भांति आपको अपने समक्ष उपस्थित इन सीधे और सरल कार्य्यों से कभी मुँह न मोड़ना चाहिए। किसी कार्य्य में कभी उतावलापन न करना चाहिए। ऐसा करने से आपके बालक भी प्रसन्न रहेंगे और आपको कुढ़ना भी न पड़ेगा।

इनके अतिरिक्त बालकों को यह जानने के लिए कि क्यों ऐसा कार्य्य वर्जित है जो ऊपर से देखने में निर्दोष मालूम पड़ता है, क्यों किसी काम में कोई रिआयत नहीं होती और क्यों प्रत्येक कार्य्य तुरंत होना चाहिए, प्रत्येक बात या अभ्यास की वास्तविकता भी जाननी चाहिए। बालक जब कोई काम करना चाहें तो उन्हें बतला देना चाहिए कि यह काम उचित है या अनुचित। यदि कोई बात अनुचित होने पर भी बहुत अधिक हानिकारक न हो तो पहले उचित कार्य्य कराके उन्हें दूसरे कार्य्य के अनौचित्य और दोष का भी अनुभव करा देना चाहिए।

यदि कोई बालक कोई अनुचित कार्य्य भी केवल एक ही बार करना चाहे, तो इस शर्त पर आप

उसे वह कार्य्य करने की आज्ञा दे सकते हैं कि उस दिन फिर वह कभी ऐसा कार्य्य न करेगा। जब बालक भली भाँति सीखने लगे तो उसे बीच बीच में ऐसी बातों की आज्ञा भी बड़ी प्रसन्नता से दे देनी चाहिए। केवल प्रारंभिक शिक्षा के समय ही आपको बुरे अभ्यास छुड़ाने और अच्छे अभ्यास डालने के संबंध में इस प्रकार के मानसिक नियमों पर बहुत विशेष ध्यान रखना पड़ेगा। आरम्भ में केवल बुरे अभ्यासों को छुड़ाने के लिए ही कभी कभी उन्हें इस प्रकार के अनुभव का अवसर देना. चाहिए। ऐसा करना मानों उन्हें सुधरने का अवसर देना है।

यदि आपका स्वभाव मृदुल हो तो आपके घर की सभी बातें सर्वोत्तम हो सकती हैं। उस दशा में जल्दी जल्दी नए उत्तम अभ्यासों की सृष्टि होती है और वे अपने उत्तम और आदर्श परिणामों के कारण तुरंत ग्रहण कर लिए जाते हैं। इसके विरुद्ध उग्रता और कठोरता आदिका परिणाम बुरा होता है। यदि आप सदा प्रसन्नचित्त रहेंगे तो आपके बालक भी प्रसन्नता और साहसपूर्वक सब प्रकार की कठिनाइयाँ और कष्ट सहेंगे, कभी दुखी या निराश न होंगे और उनमें सद्गुणों और सद्विचारों की वृद्धि होगी और ऐसी परिस्थिति में पड़ कर नैतिक दोषों का तुरंत नाश हो जायगा।

बालकों के साथ कभी किसी प्रकार की कठोरता या उग्रता का व्यवहार न करके सदा उन्हें सद्गुणी और सज्जन बनाने में सहायता देनी चाहिए। आपको क्रम क्रम से उन्हें इस योग्य बना देना चाहिए कि वे इस बात को स्वीकार कर लें कि वे कभी इंद्रियों या वासनाओं के वश में न हो कर सदा सात्विक बने रहना चाहेंगे। उन्हें इस बात के लिए भी उत्तेजित करना चाहिए कि वे इस बात में सदा अपने बड़ों से सहायता लिया करें। उनके साथ बड़े अभिभावकों की भाँति नहीं बल्कि वयस्क मित्रों की भाँति व्यवहार करना चाहिए। यदि इस नियम का पूरा पूरा पालन किया जाय तो सौ में पंचानवे बालक ऐसे निकलेंगे जिनके सभी कृत्य सात्विक, प्रशंसनीय, उच्च और सर्वप्रिय होंगे।

ऊपर कहा जा चुका है कि अनेक अवसरों पर बालकों के लिए हलका दंड भी उचित है। बात यह है कि बालकों का बुरा अभ्यास छुड़ाने या उन्हें अच्छा अभ्यास डालने के लिए असाधारण उपायों का प्रयोग होना चाहिए। यदि कोई बालक कुछ अनुचित कार्य्य करे तो अपने कृत्य पर विचार करने के लिए उसे किसी कोने या दूसरे कमरे में भेज देना अथवा इसी प्रकार का और कोई दण्ड देना बहुत कुछ फलदायक होता है और बालक के हृदय पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। यदि बिना किसी प्रकार का क्रोध, आदेश या असंतोष प्रकट किए इन उपायों का अवलंबन किया जाय तो वह भी दण्ड के बहुत कुछ समान हो जाता है।

यदि दो तीन बार लगातार समझाने पर भी कोई बालक अपना कोई बुरा अभ्यास न छोड़े तो आप उसे धीरे से थोड़े शब्दों में समझा दें कि यदि इस बार तुम अमुक कार्य्य करोगे तो तुम्हें एक बार चौके से बाहर बैठकर भोजन करना पड़ेगा। अनेक अवसरों पर तो यही दण्ड यथेष्ट हो जायगा और बालक को इस बात का ध्यान भी न होगा कि उसे कुछ दण्ड मिला है। यदि अपराध कुछ और भारी हो तो यह दण्ड भी और बढ़ाया जा सकता है।

इन दशाओं में क्रोध की कोई संभावना नहीं होती और परिणाम भी बहुत अच्छा निकलता है। ऐसी बातों को दंड के साथ कभी सम्मिलित न करना चाहिए। ये उपाय सभी लोग कर सकते हैं। पर साथ ही इनका प्रयोग बहुत अधिक भी न होना चाहिए, नहीं तो इनका तात्पर्य्य यही होगा कि उपायों का दुरुपयोग हो रहा है। जब यह बात मालूम हो जाय कि अमुक बुरा अभ्यास बालक को पूरा पूरा पड़ गया है, तभी इन उपायों का अवलंबन होना चाहिए। जो बात मना की गई हो यदि एक सप्ताह बीत जाने पर भी बालक उसे करता

रहे तो उसी से पूछना चाहिए कि तुम अपने लिए कौन सा दंड उचित समझते हो। वह उत्तर देगा कि मैं दो मिनट तक कोने में खड़ा रहूँगा। दो मिनट बीत जाने पर आप फिर उससे वही प्रश्न करें तो वह चार मिनट के लिए कहेगा। इस प्रकार करते रहने से आप ही आप उसका वह बुरा अभ्यास छूट जायगा।

यदि कोई बालक कुछ बुरा कार्य्य करे और उसे मारने पीटने से कोई फल न निकले तो उक्त प्रकार से ही दंड देना चाहिए; घंटे दो घंटे के लिए उससे बोलना छोड़ देना चाहिए अथवा इसी प्रकार का और कोई दंड देना चाहिए। जिस प्रकार कोई चिकित्सक किसी रोगी के साथ व्यवहार करता है उसी प्रकार आपको भी बालक के साथ व्यवहार करना चाहिए। इसके विरुद्ध यदि आप बिगड़ खड़े होंगे तो बालक भी बिगड़ जायगा और आपके सुधार के प्रयत्न का कुछ भी फल न होगा। शांत और विचारवान् चिकित्सक की भाँति आपको भी अपने भूल करनेवाले बालक के साथ शांति और विचारपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। निम्न-लिखित बातों का सदा बहुत अधिक ध्यान रखना चाहिए।

(क) मृदुल स्वभाव बहुत ही आवश्यक है।

(ख) बालकों की वास्तविक दशा जानने और उनके साथ न्यायसंगत व्यवहार करने के लिए अपने आपको भी बालक ही समझना चाहिए। केवल इतना समझने से आपका काम न चलेगा कि वे आपको कुछ नहीं सिखला सकते।

(ग) विचार और समझ से बहुत अधिक कार्य्य लेना चाहिए; इस प्रकार आप शीघ्र समझ जायँगे कि सर्वोत्तम कर्त्तव्य क्या है।

(घ) अपना विचार और निश्चय सदा दृढ़ रखना चाहिए और जब तक इस बात का यथेष्ट प्रमाण न मिल जाय कि आपका अभीष्ट सिद्ध हो गया तब तक अपना निश्चय बदलना न चाहिए। ऐसा करने से बालक अपने साधारण छोटे उपायों से आपको अपने निश्चय से डिगा न सकेंगे और बालक तथा आप दोनों ही प्रसन्न भी रहेंगे।

(च) इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्तिगत सम्मान या संस्कार अथवा दूसरों के आदर-भाव का विचार बालकों के लिए भी उतना ही उपयुक्त और आवश्यक है जितना बड़ों के लिए।

इन उपायों का पूरा पूरा अवलंबन करके बहुत ही कम निराश होना पड़ता है। सब लोगों को, विशेषतः माता-पिता को सदा सब का पूरा और उचित ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार आपके मन में कभी दंड देने का विचार न उठेगा और आपका गार्हस्थ-जीवन यथेष्ट उत्तम और आदर्श हो जायगा।

मनाही।

पुलिस के सिपाही का कर्त्तव्य है कि वह इस बात का ध्यान रक्खे कि कोई मनुष्य कानून के विरुद्ध किसी प्रकार का अपराध न करे; पर आपका कर्त्तव्य अपने बालकों में क़ानून या नियमों के प्रति अनुराग उत्पन्न करना है। इसलिए उन्हें दोषों से सचेत करते रहने की अपेक्षा आपके लिए अधिक उत्तम और उचित यही है कि आप उनके सामने अच्छे कार्य्यों की प्रशंसा करें और उनकी उपयुक्तता तथा उत्तमता दिखला दें।

किसी बालक को यह कहने की अपेक्षा कि—"तुम पाजी हो।" यह कहना अधिक उचित है कि—"तुम बहुत अच्छे (या ठीक) नहीं हो।" "तुम दोषी हो" "रोओ मत" "गंदे मत रहो" "शोर मत करो" "उत्पात मत करो" आदि कहने की अपेक्षा बहुत धीरे से और समझाकर उनसे कहना चाहिए—"तुमने भूल की है" "प्रसन्न हो जाओ—हँस दो" "साफ रहा करो" "धीरे बोला करो" शांत होकर बैठो" आदि।

यह बात सब लोग स्वीकार करते हैं कि इन दो प्रकार के व्यवहारों में बड़ा भेद है। एक प्रकार का व्यवहार मनुष्यों के विचार दोषों और बुराइयों की ओर ले जाता है और दूसरे प्रकार का व्यवहार

उनके विचारों को उत्तम और सुन्दर कार्यों की ओर ले जाता और सदा उन्हें सात्विक बने रहने का अभ्यास कराता है। "पाजी" "गधा" आदि शब्द पाजीपन और गधेपन की ओर ध्यान आकर्षित कराते हैं और बालक दूसरों को भी "पाजी" "गधा" आदि कहने लगता है। पहले पक्ष की सरलता ही यह बतला देती है कि उसकी उत्पत्ति अज्ञानता और अयुक्ति से युक्त है और उसके मूल में कोई अच्छा आदर्श नहीं है; पर दूसरे पक्ष की कठिनता यह बात सिद्ध करती है कि उसमें न्याय से काम लिया और शिक्षा के सुन्दर परिणाम पर ध्यान रक्खा गया है। इसलिए सदा अच्छी बातों पर ध्यान रखना चाहिए और बुरी बातों को दिल से निकाल देना चाहिए। अच्छी बातों पर जितना ध्यान रहता है अथवा रहना उचित है, वह तो रहना ही चाहिए; साथ ही जो ध्यान बुरी बातों की ओर जाता हो उसे भी अच्छी बातों की ओर प्रवृत्त करके उसकी मात्रा दूनी कर देनी चाहिए।

शरीर की रक्षा।

कुछ लोग तो ऐसे हैं जो यह समझते हैं कि यदि बालक के स्वास्थ्य का पूरा पूरा ध्यान रक्खा जाय तो वह प्रसन्न, बुद्धिमान् और सज्जन होगा; पर ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो यह समझते हैं कि जीवन के उच्चतर कार्य्यों में स्वास्थ्य से कोई सहायता नहीं मिलती। पर हम इन दोनों का मध्यवर्त्ती पक्ष बतलाना चाहते और कहते हैं कि यदि विचार और आचरण पर उचित ध्यान न रक्खा जाय तो स्वास्थ्य भी कभी न कभी अवश्य बिगड़ जाता है; और यदि स्वास्थ्य पर ध्यान न दिया जाय तो चरित्र और विचारों के उच्चतम होने की बहुत ही थोड़ी जगह बच जाती है।

अंतिम बात का महत्त्व आपको भूल न जाना चाहिए। बालकों को केवल नित्य नहला धुलाकर उनका शरीर स्वच्छ रखना और उन्हें साफ़ कपड़े पहनाना ही पर्य्याप्त नहीं है बल्कि उनके भोजन पान आदि सभी छोटी बड़ी बातों में बहुत अधिक स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए। उनके लिए दूध तथा अन्य खाद्य पदार्थ सदा बहुत अच्छा होना चाहिए और सब चीज़ें बहुत अच्छी तरह उबाली और पकी हुई होनी चाहिएं। उनके पीने का दूध और पानी ख़ूब अच्छी तरह गरम कर लेना चाहिए। उनके खाद्य पदार्थों में ऋतु आदि के अनुसार कभी कभी कुछ परिवर्त्तन भी करते रहना चाहिए और नित्य उन्हें कुछ फल आदि भी देने चाहिएं। उनका भोजन सादा पर कई प्रकार का होना चाहिए। यदि बालक की पाचन-शक्ति ठीक हो और उसे ख़ूब भूख लगती हो तो समझना चाहिए कि उसे ठीक ठीक भोजन मिलता है। जाड़े के दिनों में उन्हें गरम और गरमी के दिनों में हलके कपड़े पहनाने चाहिएं; ऋतु के अनुसार उनका ओढ़ना बिछौना भी बदलते रहना चाहिए। उन्हें मादक द्रव्यों तथा बहुत अधिक सरदी और गरमी से भी बचाना चाहिए। सब ऋतुओं में खुली हवा में उन्हें व्यायाम कराना चाहिए, कभी किसी दशा में बहुत अधिक न थकने देना चाहिए और इच्छा प्रकट करते ही उन्हें तुरंत आराम करने देना चाहिए। यदि बालक दुखी मालूम पड़े तो देखना चाहिए कि उसके कमरे में स्वच्छ प्रकाश पहुँचता है या नहीं और उसकी पाचन-शक्ति ठीक है या नहीं। यदि वह ज़रा भी बीमार हो तो तुरंत डाकृर को बुलवाना चाहिए और उसकी सम्मति के अनुसार कार्य्य करना चाहिए। बीच बीच में उनके दाँतों, कानों और आँखों आदि को भी ध्यानपूर्वक देख लेना चाहिए। यदि भय हो तो बालक के भली भाँति लालन-पालन के विषय में किसी योग्य डाकृर की सम्मति भी ले लेनी चाहिए।

इस अवसर पर बहुत सी बातों अथवा किसी एक बात के विषय में बहुत कुछ कहना असंभव है। पर यदि आप ऊपर लिखी बातों का पूरा पूरा अभिप्राय समझ लें तो यह प्रकरण लिखने का उद्देश्य पूरा हो जायगा। इस पुस्तक का अभिप्राय यही है कि जो माता-पिता अपने बालकों के स्वास्थ्य या

आचरण में से किसी एक से भी उदासीन हो जाते हैं वे दोनों से उदासीन होकर उन्हें नष्ट कर देते हैं।

मनुष्य की चार अवस्थाएं।

यहाँ तक शिक्षा की प्रारम्भिक बातों का वर्णन करके अब हम उसकी वास्तविक प्रणाली बतलाते हैं। अपने इस कार्य्य के लिए हम शिक्षा-काल को चार अवस्थाओं में विभाजित करते हैं।—(क) जन्म से ढाई वर्ष तक की अवस्था, (ख) ढाई से सात वर्ष तक की अवस्था, (ग) सात से इक्कीस वर्ष तक की अवस्था और (घ) इक्कीस वर्ष से ऊपर की अवस्था। पहली अवस्था में जब कि बालक को उतनी समझ नहीं होती, आप को उसे अच्छे अभ्यास डालने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। दूसरी अवस्था में जब कि बालक में इतनी समझ आ जाती है कि वह आज्ञाओं का यथावत् पालन कर सके, उसको आज्ञाकारी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। तीसरी अवस्था में जब कि उसकी मानसिक शक्तियाँ भली भाँति विकसित हो जाती हैं, उसे आदर-भाव से शिक्षा देनी चाहिए। इसके उपरांत की और अंतिम अवस्था में उसे आत्मनिर्भर होकर स्वयं अपना पथ-दर्शक बनना चाहिए।

इतना होने पर भी उत्तम अभ्यास डालने का क्रम बराबर दूसरी, तीसरी और चौथी अवस्थाओं में भी जारी रहना चाहिए। इसी प्रकार आज्ञाकारिता का क्रम तीसरी और चौथी अवस्थाओं में और आदर-भाव का चौथी अवस्था में जारी रहना चाहिए। वास्तव में इन चारों प्रणालियों का प्रयोग सभी अवस्थाओं में किसी न किसी अंश में हो सकता है। जिस समय जिस बात की अधिक आवश्यकता हो उस समय उसी बात पर ज़ोर देना उचित है।

इस पुस्तक में पहली, दूसरी और तीसरी अवस्थाओं पर अधिक ज़ोर दिया जायगा।

मनुष्य की चार अवस्थाएं।

जन्म से ढाई वर्ष तक की अवस्था।

साधारण बातें।

(क) जन्म लेते ही और उसके कुछ समय बाद तक बालक बहुत ही निस्सहाय अवस्था में रहता है। बहुत प्रारम्भिक अवस्था में चाहे उसकी आवश्यकताएं कितनी ही अधिक हों तथापि उसमें अभिलाषाओं का अभाव ही रहता है। उस समय आपको बालक से यह कहने की आवश्यकता नहीं कि तुम अमुक कार्य्य करो अथवा न करो। वह स्वयं अपनी आवश्यकताएं नहीं जानता; और यदि किसी प्रकार जान भी ले उसमें उन्हें पूर्ण करने की योग्यता नहीं होती। और यदि वह किसी प्रकार अपनी आवश्यकताएं और उन्हें पूर्ण करने के उपाय जान भी ले तो भी अपनी शारीरिक अशक्ति के कारण वह उन्हें पूरा करने में असमर्थ ही रह जाता है।

(ख) कुछ महीनों बाद बालक में कुछ निश्चित अभिलाषाएं हो जाती हैं पर उस समय भी उसकी शारीरिक स्थिति उसे असमर्थ ही रखती है। उस अवसर पर उसकी आवश्यकताएं तो अनेक होती हैं पर उन्हें प्रकट करने की उसमें शक्ति नहीं होती। यदि वह भूखा या प्यासा हो, यदि उसे सरदी या गरमी लगती हो, यदि वह अस्वस्थ या दुखी हो, यदि उसे कोई चोट लग गई हो अथवा उसे और किसी प्रकार का कष्ट हो तो वह केवल रोने चिल्लाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसी दशा में उसके कष्ट का कारण जानना आपका काम है। निम्न-लिखित कारणों से बालकों में बेचैनी होती हैः—

अधिक सोना या जागना, सरदी, गरमी, भूख, बहुत अधिक पेट भरा होना, भोजन का उपयुक्त या उत्तम न होना, आराम न मिलना, कुछ गड़ना, किसी दूसरे का दूध आदि पिलाना, तंग कपड़ा, कुछ काम न होना, कोई प्रसन्न करने वाला या नया काम न होना, चोट, दर्द, (इस दशा में

सारा बदन छूकर देखना चाहिए), गोद में जाने की इच्छा होना, लेटने की इच्छा होना, बैठने की इच्छा होना, गुलगपाड़े से जी घबराना, करवट बदलने की इच्छा होना, किसी प्रकार की आवश्यकता होना, गीला, गंदा, भयभीत थका या मांदा होना ।

(ग) जब बालक अट्ठारह महीने का हो जाता है तो वह अपनी आवश्यकताओं को किसी न किसी प्रकार जतलाने के योग्य हो जाता है । वह थोड़े से पर बहुत ही उपयोगी शब्द भी याद कर लेता है । अपने बहुत से काम वह आपही कर लेता है । यदि उससे कोई काम करने के लिए कहा जाय तो वह उसे समझता और कुछ अंशों में करता भी है ।

छोटे बालक को इस प्रकार तीन अवस्थाएँ पार करनी पड़ती हैं । अब उसे शिक्षा देने का प्रकार आपके उद्देश्य और लक्ष्य पर निर्भर करता है । यदि आपका उद्देश्य उसे सुयोग्य, सशक्त, परिश्रमी और दयालु बनाना हो तो आपको अभी से उसे इन बातों पर लक्ष्य करके शिक्षा आरम्भ कर देनी चाहिए । ऐसी दशा में जब कि बालक न तो आपकी आज्ञाएँ समझ सकता हो और न वह उनके पालने में समर्थ हो तो उसे कुछ सिखलाने या समझाने का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता; तथापि उस दशा में शिक्षा का, पूरा करने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण उद्देश्य अवश्य रहता है । वास्तव में बालक की जन्म से ढाई वर्ष तक की अवस्था बहुत मुख्य होती है क्योंकि उसके भविष्य की नीव उसी समय पड़ती है ।

चाहे आरंभ में आप बालक से किसी बात के लिए कह न सकें तथापि आप उसका प्रभाव उस पर डाल सकते हैं । आप उससे जो चाहें करा सकते हैं, जिस दशा में चाहें रख सकते हैं और उसके साथ जैसा उचित समझें व्यवहार कर सकते हैं । उस समय वह सब प्रकार से आपके अधिकार में होता है । न वह कोई बात स्मरण रख सकता है और न आपके विचारों में सहायता दे सकता अथवा बाधा डाल सकता है । उस समय यदि आपका उद्देश्य निश्चित हो और आप विचारपूर्वक कार्य्य करें तो स्वयं बालक की असमर्थता ही आपको बहुत कुछ सहायता दे सकती है ।

किसी वयस्क मनुष्य को किसी बतलाये हुए मार्ग पर चलाना बहुत कठिन होता है । यदि वह स्वयं भी उस पथ पर चलना चाहे तो भी अपने पुराने अभ्यास के कारण उसका निश्चय अपूर्ण रह जाता है । पर बालक में यह बात नहीं होती । उसकी प्रकृति बहुत ही उपजाऊ और शुद्ध भूमि की तरह होती है और यदि आप विचार से काम लें तो अवश्य कृतकार्य्य हो सकते हैं ।

इस अवसर पर एक ऐसी कठिनता आ पड़ती है जो यदि आप होशियार रहें तो आपको कोई हानि नहीं पहुँचा सकती । आप अपने बालक को सदा उपयुक्त भोजन दें, उसे उचित और यथेष्ट शारीरिक तथा मानसिक अभ्यास करावें, दिन रात स्वच्छ और ताज़ी हवा में रक्खें, उसे ठीक तरह से स्नान आदि करा दें, गरम रक्खें और खेलने या आराम करने दें । यदि इन बातों का पूरा ध्यान रक्खा जाय तो फिर किसी प्रकार के भय की संभावना नहीं रह जाती ।

चाहे आप उसे आज्ञाएँ न भी दे सकें पर तो भी आप उसे ऐसे अभ्यास डाल सकते हैं जो उसे आपके उद्दिष्ट मार्ग पर चला सकें । आरंभ में आपका प्रधान लक्ष्य अच्छी आदतों पर होना चाहिए और साथ ही साथ उससे ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि जिसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़े और जो उसे भविष्य के लिए तैयार कर सके ।

जिस बालक को बुरे अभ्यास पड़ गए हों उसके अनुचित कृत्यों से कुढ़ना या खिजलाना और भी बुरा होता है । पर यदि बालक को अच्छी तरह शिक्षा दी गई हो तो यह बात नहीं होती; क्योंकि उस दशा में एक अच्छे अभ्यास से दूसरा नया अच्छा अभ्यास डालने में बहुत सहायता मिलती है । पर बिना उचित व्यवहार किए यह बात नहीं हो सकती । यदि आप उसके साथ ठीक ठीक व्यवहार करें तो शीघ्र ही यदि उसमें कोई पहले की बुरी

आदत होगी तो वह भी छूट जायगी और वह नई अच्छी आदतें भी सीख लेगा।

यदि सब बातों का क्रम विचारपूर्ण हो तो बालक की उचित आवश्यकताएँ बहुत अच्छी तरह पूरी हो सकती हैं और उसमें मानसिक या शारीरिक दुर्बलता भी नहीं आ सकती। यदि परिस्थिति ठीक हो तो उसे आपसे आप अच्छी आदतें पड़ जायँगी और आगे चल कर जब वह उनसे अभिज्ञ हो जायगा तो यही आदतें उसमें स्वाभाविक मालूम होने लगेंगी। उसका स्वभाव विनोदपूर्ण हो जाता है, मनमें खूब सोचने की शक्ति आ जाती है और इच्छा-शक्ति बहुत सरलता से वश में की जा सकती है।

सब बातें क्रमबद्ध होनी चाहिएं।

इस संबंध में नीचे लिखे प्रकार के अभ्यास हो सकते हैं:—

(१) बराबर ठीक समय पर बालक को लेटा देना चाहिए और उस समय यदि वह जागता हो तो उसे अकेले छोड़ देना चाहिए और कमरे में कोई प्रकाश न रहने देना चाहिए।

(२) उसे ठीक समय पर उठ बैठना चाहिए और अवस्थानुसार निश्चित समय से अधिक न सोना चाहिए।

(३) स्वास्थ्य ठीक रहने पर उसे नित्य निश्चित समय और स्थान पर नियमित रूप से नहलाना और दूध आदि पिला देना चाहिए और निश्चित समय से पूर्व उसे किसी प्रकार का भोज्य पदार्थ नहीं मिलना चाहिए।

(४) प्रायः सभी ऋतुओं में दिन में कम से कम दो बार और डेढ़ घंटे के लिए उसे घर से बाहर खुली हवा में रखना चाहिए।

(५) ढाई बरस की अवस्था से उसे स्वयं ही खाने, नहाने और कपड़ा पहनने लगना चाहिए।

(६) उसे छड़ी, चाकू, दियासलाई, दीया अथवा इसी प्रकार की और कोई चीज न छूनी चाहिए और न दूसरे के पास कोई चीज देख कर उसे लेने की इच्छा प्रकट करनी चाहिए।

(७) भोजन से पहले और पीछे उसे अच्छी तरह हाथ मुँह धो लेना चाहिए और सदा स्वच्छ रहना चाहिए।

(८) तौलिए या रूमाल से उसे हाथ मुँह पोंछना चाहिए।

(९) जब तक वह स्वस्थ हो तब तक उसे सदा उचित और निश्चित समय पर प्राकृतिक आवश्यकताओं (पेशाब, पैखाना आदि) से निवृत्त करा देना चाहिए।

(१०) उसे प्रसन्नचित्त होकर सबका अभिवादन आदि करना, उनका मिजाज पूछना और आवश्यकतानुसार उन्हें धन्यवाद देना चाहिए।

(११) धीरे धीरे उसे इस सिद्धांत का अनुयायी बनाना चाहिए कि—"प्रत्येक वस्तु के लिए एक उपयुक्त और निश्चित स्थान होना चाहिए और प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर रक्खी जानी चाहिए।"

इन सब अभ्यासों से आपका भी कल्याण होगा और बालक का भी; और यदि उनके साथ विचार और दृढ़तापूर्वक व्यवहार किया जायगा तो उन्हें किसी प्रकार की कठिनता न हो सकेगी। बालक ख़ूब स्वच्छन्दतापूर्वक रह सकेंगे और उनमें किसी प्रकार के बुरे अभ्यास न रह जायँगे।

बालक से बहुत ही थोड़ी और मुनासिब बात कहनी चाहिए। दो ही एक शब्दों में और स्पष्टतापूर्वक उसे सारी बात समझा देनी चाहिये और बिना उसे डाँटे डपटे, मारे पीटे या उसपर बिगड़े, और प्रसन्न होकर उससे आज्ञा-पालन कराना चाहिए। दलील करने से बालक का स्वभाव बिगड़ जाता है और वह आज्ञाकारी नहीं रह जाता। किसी बात को बार बार दोहराना न चाहिए। यदि डेढ़ बरस से अधिक अवस्था का स्वस्थ बालक कोई अनुचित या अनावश्यक पदार्थ माँगे तो उसकी बात पर ध्यान न देना चाहिए और

उसे दो तीन बार तक चिल्लाने देना चाहिए; वह अंत में चिल्लाकर थक जायगा और भविष्य में वैसी बातों के लिए बहुत ही कम चिल्लायगा।

इस प्रकार बालक के सब कार्य्य क्रमबद्ध हो जायँगे। नित्य के व्यवहारों और कार्य्यों में क्रम के अभाव के कारण समय नष्ट होता है, किसी प्रकार की उन्नति या वृद्धि नहीं हो सकती, सदा कष्ट होता है और आत्मवशता जाती रहती है। सब बातों के शृङ्खला-बद्ध होने की आवश्यकता इसलिए है कि उसमें आवश्यकताएँ निश्चित और परिमित होती हैं और उनकी सब से उत्तम पूर्त्ति निश्चित उपायों से ही हो सकती है।

यदि आप प्रारम्भिक और उसके बाद की अवस्थाओं में बालकों को इस योग्य बना सकें कि वे सब काम ठीक समय पर और उचित रीति से करें, सदा सज्जनता, शुद्धता और परिश्रम का ध्यान रक्खें, किसी प्रकार के मादक द्रव्य का व्यवहार न करें, अच्छे लोगों का साथ करें, विद्या, प्रकृति, कला, प्रतिष्ठा, आत्म-निर्भरता और सादे जीवन पर अनुराग रक्खें और अनावश्यक बातों से दूर रहें तो आप बहुत सी कठिनाइयों से बच सकते हैं। उन्हें इस बात का अभ्यास डालने की सब से अधिक आवश्यकता है कि वे केवल उचित और विचारपूर्ण कार्य्य करें। इसी से और अभ्यासों के दोष का परिहार हो जायगा।

आपको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हम केवल अनुचित या उचित और बुरी या अच्छी आदतें ही डाल सकते हैं; इन दोनों में से कोई एक परम आवश्यक और उचित है और अच्छी आदत के अभाव में अनुचित या बुरी आदत पड़ना अनिवार्य्य है। ज्यों ज्यों आपके बालक बड़े होते जायँ त्यों त्यों आपको यही आशा रखनी चाहिए कि उनकी अनुचित या बुरी आदतें धीरे धीरे छूटती जायँगी और वे विचार, परिश्रम, योग्यता और प्रेम-पूर्वक उचित कार्य्य करने लग जायँगे।

दूसरी श्रेणी के अभ्यासों को हम सादे जीवन के अंतर्गत रख सकते हैं।

सादा जीवन। (१) भोजन सदा बहुत सादा, पुष्ट और सस्ता होना चाहिए और पाचन-शक्ति के लिए किसी प्रकार हानिकारक न होना चाहिए।

(२) मिठाइयों का व्यवहार बहुत कम, प्रायः भोजन के उपरांत अथवा जलपान के समय होना चाहिए।

(३) बालक का बिछौना सदा ऐसा होना चाहिए जो समय पाकर उसे बहुत कोमल न बना सके।

(४) उसे सदा गोद में रहने या कंधे पर चढ़े फिरने का अभ्यास न पड़ना चाहिए। उसे दूसरों की सहायता का आश्रित न रहना चाहिए और ढाई वर्ष की अवस्था के बाद उसे अपने सब काम प्रायः आप ही करने चाहिएँ। यदि उसपर हरदम बहुत अधिक ध्यान न रक्खा जाय और उसे ऐसे स्थान में छोड़ दिया जाय जहाँ वह अपने माता-पिता को न देख सके तो उसमें आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता आ जायगी।

(५) उसका पहनावा साफ़, सादा, अच्छा और मज़बूत होना चाहिए। बढ़िया कपड़े ख़राब हो जाने के भय से उसका व्यायाम न छुड़ा देना चाहिए।

(६) स्वस्थ रहने, खेलने कूदने, चपलता करने और प्रकृति से संबन्ध रखने में उसे प्रसन्न रहना चाहिए।

(७) बालकों में, विशेषतः उदाहरणों द्वारा, साहस और दृढ़तापूर्वक काम करने का विचार बहुत ही सादे रूप में उत्पन्न कराना चाहिए।

(८) उनकी प्रकृति ऐसी बनानी चाहिए कि जिसमें वे सदा प्रसन्न रहें और बाह्य जगत् के पदार्थों और कार्य्यों से प्रसन्नता की आशा न रखकर उसे स्वयं उत्पन्न कर सकें।

इस श्रेणी की आदतों का संबंध बालक की इच्छापूर्त्ति से है; और यहीं से उसके लिए सादी और

पुष्ट रुचियों का आरंभ होता है। उसे किसी प्रकार का अपव्यय या शौक़ीनी न करने देना चाहिए। इस प्रकार शिक्षा देने से बालक न तो अव्यवस्थित-चित्त होता है और न उसकी आवश्यकताएँ ही अधिक बढ़ने पाती हैं। जिन बातों की उसे वास्तविक आवश्यकता होती है वह उन्हीं की इच्छा रखता और उन्हें ही सम्पादित करता है और अनावश्यक बातों से सदा दूर रहता है।

उपर्युक्त प्रकार के सादे जीवन का विचार प्रधान महत्त्व का है। बहुत से लोगों को सदा सुख चैन से रहने और बढ़िया बढ़िया भोजन आदि करने की ही चिंता रहती है; ऐसे लोगों के विरुद्ध इस पुस्तक के लेखक का मत है कि हमारी शारीरिक आवश्यकताओं और तदनुगत विचारों द्वारा ही हमारे कार्य्य निश्चित होते हैं। इसी लिए हम लोगों को सदा यही जानने की चेष्टा करनी चाहिए कि हमारी वास्तविक आवश्यकताएँ क्या हैं; और उन आवश्यकताओं को छोड़ देना चाहिए जो हमारी वास्तविक आवश्यकताएँ नहीं हैं बल्कि जिनकी उत्पत्ति केवल हमारे अनुमान या ध्यान से ही हुई है।

इच्छा-शक्ति को वश में रखना।

तीसरी श्रेणी के अभ्यासों में इच्छा-शक्ति को अपने वश में रखना है। इस संबन्ध में हमारा उद्देश्य यह है कि बालक अपनी आरम्भिक अवस्था से ही—बालकों की भांति निर्भयता, बुद्धिमत्ता, सुन्दरता, प्रसन्नता, उत्सुकता और शीघ्रता से केवल उचित और युक्तियुक्त कार्य्य करे।

आरंभिक से अंतिम अवस्था तक ऐसे महत्त्वपूर्ण सुकृत्य करने के बहुत अधिक अवसर मिलते हैं। इस संबंध की कुछ आवश्यक आदतों का यहाँ वर्णन किया जाता है। इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि बालक से कभी कोई युक्तिहीन कार्य्य करने के लिए न कहा जाय नहीं तो हमें किसी प्रकार की सफलता न होगी और उल्टे बालक दुखी या बीमार हो जायगा।

(१) जो कार्य्य करना अभीष्ट न हो उसके संबंध में "मुझे बहुत दुःख है" अथवा इसी प्रकार का और वाक्य कहना चाहिए। ऐसा वाक्य दोहराना न चाहिए, बहुत साधारण अवसरों पर उसका व्यवहार न होना चाहिए और उसपर तुरंत ध्यान दिया जाना चाहिए।

(२) विशिष्ट सूचनाओं का तुरंत पालन होना चाहिए।

(३) बालकों पर कभी बहुत अधिक बिगड़ना या उन्हें मारना पीटना न चाहिए। आज्ञा देने अथवा अप्रसन्नता प्रकट करने के समय आवाज़ ऊँची नहीं बल्कि धीमी होनी चाहिए।

(४) साधारणतः जिस प्रकार नित्य बात चीत करते हैं उसी प्रकार से बालकों को किसी काम के लिए कहना अथवा मना करना चाहिए।

(५) बालकों को कभी किसी काम के लिए किसी प्रकार का पुरस्कार आदि न देना चाहिए और न उन्हें लेना चाहिए। उनके अच्छे कामों से प्रसन्न और बुरे कामों से दुखी हो जाना ही यथेष्ट है। बालकों को जो सम्मति दी जाय उसके अनुसार उन्हें बहुत प्रसन्नता और स्वाभाविक रूप से कार्य्य करना चाहिए।

(६) यदि बालक को किसी अनुचित कार्य्य के लिए एक बार मना किया जाय तो (थोड़ी देर के लिए, अथवा रुग्णावस्था को छोड़ कर) फिर उसके रोने चिल्लाने से कभी उसकी स्वीकृति न देनी चाहिए। इससे बालक को इस बात की शिक्षा मिलती है कि ज्यों ज्यों वे बड़े होते जायँ त्यों त्यों व्यर्थ और अनावश्यक बातों के लिए रोना चिल्लाना छोड़ते जायँ।

(७) बहुत से माता-पिता अकारण ही बहुत देर तक बालकों के प्रश्नों का उत्तर नहीं देते और न उनकी बातों पर कुछ ध्यान देते हैं; इससे बालक अधीर हो जाते हैं। अतः उनकी बातों पर तुरंत ध्यान देना चाहिए और उत्तर के लिए उन्हें बहुत देर तक आसरे में न रखना चाहिए।

(८) जब बालक कोई चीज न लेना चाहे तो उससे कभी यह या इसी प्रकार की ओर कोई बात न कहनी चाहिए कि "अगर तुम इसे न लोगे तो कोको ले जायगी" या "इसे तुम्हारे भाई को दे देंगे।" आदि।

(९) बालकों से काम कराने के समय कभी उन्हें चिढ़ाना या उनसे किसी प्रकार का हँसी ठट्ठा आदि न करना चाहिए।

(१०) यदि बालक कोई चीज माँगता हो तो उसे बहका कर या ओर कोई चीज दिखला कर उसका ध्यान कभी दूसरी तरफ़ न फेरना चाहिए। हाँ, बहुत छोटेपन में, प्रायः डेढ़ वर्ष की अवस्था तक, बीमारी में, अथवा ऐसे अवसर पर जब कि बालक भी अपना ध्यान बँटाना चाहता हो इस प्रकार बहकाना अनुचित नहीं है।

ऊपर जो बातें कही गई हैं, किसी बुद्धिमान या दृढ़ माता-पिता को कभी उनके विरुद्ध चलने की कोई आवश्यकता न होगी। जो कार्य्य बड़े बड़े कठोर उपायों से सम्पन्न नहीं हो सकते वे विचार और दृढ़ता की सहायता से बहुत सहज में सम्पन्न हो जाते हैं। किसी दुष्ट बालक को बहुत अधिक मारने पीटने से भी जो फल नहीं होता वह किसी अच्छे बालक को अप्रसन्नतासूचक दृष्टि से देखने या कोई साधारण निराशायुक्त बात कहने से ही हो जाता है।

नियमित उत्तम अभ्यासों, सादे जीवन और भली भाँति वश में की हुई इच्छा-शक्ति से माता-पिता और बालक दोनों का कार्य्य बहुत हलका हो जाता है।

चौदह नैतिक अभ्यास।

आरंभिक अवस्था के लिए चौथी और अंतिम श्रेणी के जिन अभ्यासों की आवश्यकता होती है वह नीति से संबंध रखते हैं। इस अवस्था में उनकी संख्या अपेक्षाकृत थोड़ी ही है। वे अभ्यास इस प्रकार हैं—

(१) बालक की आकृति, कपड़े या और किसी चीज की अनावश्यक प्रशंसा करके उसे कभी बिगाड़ना न चाहिए।

(२) बालक को कभी ऐसा कहने या सुनने का अवसर न देना चाहिए कि "यह चीज हमारी है" और "यह तुम्हारी है"। उसे सदा यही समझाना चाहिए कि सब चीज़ें सब की हैं। पर साथ ही उसके निजत्व भाव को समूल नष्ट भी न करना चाहिए; क्योंकि उससे अनेक लाभ भी होते हैं।

(३) बालक को और लोगों के साथ सब बातों में प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित होना चाहिए।

(४) बालक को नम्र और सुशील होना चाहिए। किसी बात के लिए प्रार्थना करने के समय 'कृपया' आदि शब्दों का व्यवहार करना चाहिए और उस कार्य्य के हो जाने पर करनेवाले को धन्यवाद देना चाहिए।

(५) दो बरस से बड़े बालक को छोटे छोटे कार्य्यों में सहायक होना चाहिए और अपना कार्य्य प्रायः स्वयं ही कर लेना चाहिए।

(६) छोटे छोटे कष्टों को उसे साहसपूर्वक सहना चाहिए और उनपर बहुत कम ध्यान देना चाहिए। जिस स्थान पर बालक गिर पड़ता है बहुत से लोग उस स्थान को मारने लगते हैं और बालक के जिस अंग पर चोट लगती है उसे फूँकने या चूमने लगते हैं। यद्यपि इसमें बहुत अधिक हानि नहीं है पर तो भी यह बात ठीक नहीं है। ऐसे अवसरों पर यह कहना बहुत उपयुक्त और लाभदायक होता है कि—"जाने दो, कुछ परवा नहीं"। उन्हें डरपोक बनाने की अपेक्षा साहसी बनाने का उद्योग होना चाहिए।

(७) प्रायः बालक जब किसी को मारते या चिकोटी काटते हैं तो और लोग देख कर बहुत प्रसन्न होते और उस काम के लिए बालक की प्रशंसा करते हैं। यह बात बहुत अनुचित है और इसे तुरंत रोकना चाहिए।

(८) बालक को इस बात के लिए उत्तेजित करना चाहिए कि उसकी दृष्टि विशद, स्वर मनोहर और विचार दृढ़ हों।

(९) प्रथम अवस्था की समाप्ति पर जहाँ तक संभव हो बालक को उचित कार्य्य करना और उसी पर प्रेम रखना चाहिए।

(१०) बालक में सुशीलता, सद्गुण और सुविचार उत्पन्न करने के लिए कोई पालतू छोटा जानवर उसके सपुर्द कर देना चाहिए। जिस समय बिल्ली, कुत्ते आदि थक या खिजला जायँ, गुर्राने, भौंकने या दुम फटकारने लगें, अथवा हाथ से छूट कर भागने की चेष्टा करें उस समय उन्हें छोड़ देना चाहिए। गुड्डा, गुड़िया और इसी प्रकार की दूसरी चीजों के व्यवहार और खेल आदि से बालक सचेष्ट हो जाते हैं। साथ ही उनके लिए अपने भाइयों, बहनों और बड़ों को गृहस्थी के तथा दूसरे कामों में यथाशक्ति सहायता देना सर्वोत्तम है। छोटे छोटे पौधों की रक्षा का काम बालकों के सपुर्द करने से भी उन्हें बहुत कुछ शिक्षा मिलती है। यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि बिलकुल न खेलने और सदा काम में लगे रहने से चतुर बालक भी बोदे हो जाते हैं।

(११) कोई विषय या कार्य्य कभी अधूरा न छूटना चाहिए।

(१२) हर एक काम खूब ही जी लगा कर, बहुत होशियारी और समझदारी से होना चाहिए।

(१३) बालक को सदा खूब प्रसन्न रहने और छोटे छोटे कष्टों पर ध्यान न देने की शिक्षा मिलनी चाहिए। उसे वीरता और साहस-प्रिय होना चाहिए।

(१४) सभी छोटे बड़े कामों और जीवमात्र के संबंध में बालक को औचित्य का बहुत व्यापी ध्यान रखना चाहिए।

साधारणतः सभी प्रकार के अभ्यासों में निश्चित अवसरों पर विशेष कठिनाइयाँ हुआ करती हैं। एक तो दो वर्ष की अवस्था में जब कि बालक को कुछ ज्ञान होने लगता है। दूसरे, चार पाँच वर्ष की अवस्था में जब कि बालक में भाषण और इच्छा-शक्ति बढ़ती है। तीसरे, दस वर्ष की अवस्था में जब से बालक स्वयं कोई कार्य्य करने के योग्य हो जाता है। और चौथे जब युवावस्था की समाप्ति होती है और वह वयस्क हो जाता है। पहली, दूसरी और तीसरी अवस्थाओं में बालक को उत्तम अभ्यास डालने के लिए धैर्य्य की आवश्यकता होती है क्योंकि उस समय केवल अस्थायी अवसर को पार करने का प्रश्न होता है। जिस समय बालक एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने लगे उस समय उसपर किसी बात के लिए बहुत अधिक जोर न देना चाहिए और कभी कभी यह भी समझ लेना चाहिए कि इसमें भूल बालक की नहीं बल्कि हमारी ही है। हमें कुछ अंशों में समय पर भी भरोसा रखना चाहिए। उस समय हमें केवल बुद्धिमत्ता से काम लेना चाहिए और इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि पुराने व्यवहारों के स्थान में नए प्रकार के व्यवहारों को कहाँ तक परिवर्त्तित करना उचित है।

ऊपर कहे हुए नियम आदि सभी साधारण बालकों के लिए समान रूप से प्रयुक्त हो सकते हैं; एक दम असाधारण बालकों के लिए नहीं। यदि आपका बालक दुर्बल हो तो उसकी अधिक रक्षा होनी चाहिए; यदि उसकी शक्तियों में और किसी प्रकार का विकार हो तो उसे उत्तेजक या भयानक बातों से बचाना चाहिए।

अगर बालक को ऊपर लिखे हुए चारों श्रेणियों के अभ्यास पूर्ण रूप से पड़ जायँ तो वह सदा स्वस्थ, प्रसन्न और चपल रहेगा, उसकी वासनाएं साधारण और सादी होंगी, उसे बहुत सी अच्छी अच्छी बातों की आदत पड़ जायगी और उसके अवस्थानुसार उसका नैतिक आचरण बहुत पुष्ट होता जायगा।

ज्ञान-वृद्धि।

प्रारंभिक अवस्था में बालक की ज्ञान-वृद्धि के लिए कोई यथेष्ट प्रबंध नहीं हो सकता। तो भी सन्दूक़, कलम, कमीज़, फूल, तोता, बिल्ली तथा गृहस्थी के अन्य ऐसे पदार्थ जो बालकों को रुचते हों, उन्हें भली भाँति दिखलाने चाहिएं और उनके विषय में मुख्य मुख्य रोचक बातें उन्हें सुनना चाहिए।

झूठ मूठ कोई चीज़ खाने पीने या पकड़ने के बहाने से उनकी अनुमान और विचार-शक्ति की वृद्धि हो सकती है।

समय समय पर हाल की और बीती हुई बातों का ध्यान दिलाते रहने से उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र हो सकती है।

चलने फिरने और घूमने के समय सूर्यास्त और फूलों आदि पर विचार करने से उनमें सोचने की शक्ति बढ़ती है।

यदि बालक अपने संबंध की किसी बात या परिस्थिति को एक एक करके अपने भाइयों, बहनों या और संबंधियों पर घटावे अथवा एक थाली या कटोरे का घर की बाकी थालियों या कटोरों से मिलान करे तो उसमें साधारणतः सम-विभाग करने की शक्ति आ जाती है।

मुख्य तात्पर्य्य यह कि प्रारम्भिक अवस्था में उसे जो कुछ मानसिक शिक्षा दी जायगी वह बड़े होने पर उसके लिए बहुत काम की होगी।

—:o:—

ढ़ाई से सात वर्ष तक की अवस्था।

बालक की उठान।

आपको सदा इस बात पर दृष्टि रखनी चाहिए कि आपके बालकों में नित्य और शीघ्रतापूर्वक परिवर्त्तन हो रहा है। वयस्क मनुष्यों में भी बराबर परिवर्त्तन हुआ करता है; पर वह परिवर्त्तन न तो इतनी शीघ्रता से होता है और न इतनी अधिकता से। इसलिए बालक के विषय में आपको सदा यही समझना चाहिए कि वह ख़ूब बढ़ता और परिवर्त्तित होता रहता है। बराबर थोड़े थोड़े दिनों में बालक की बदलती हुई प्रकृति के अनुकूल, उसके साथ व्यवहार होना चाहिए। कभी कभी तो एक ही सप्ताह में उसमें बहुत बड़ा परिवर्त्तन दिखलाई देगा। यदि आप यह तत्त्व भूल जायँगे तो आप उन्हें अनेक कार्य्यों से रोकेंगे, जिनसे रोकना केवल कुछ सप्ताह पहले ही युक्ति-युक्त था। उस दशा में जिस भूमि पर वे बढ़ रहे हैं, उसकी एक एक अंगुल के लिए उन्हें आपके साथ झगड़ना पड़ेगा। और आप केवल उसी दशा में उनकी आवश्यकता पूरी करेंगे जब कि आप उनका विरोध करने में असमर्थ हो जायँगे। पर यदि आप बुद्धिमान् होंगे तो साथ ही साथ आप भी बालक के परिवर्त्तन के अनुकूल ही होते जायँगे और उसके साथ कोई ऐसा व्यवहार न करेंगे जो उसकी उठान में बाधक हो।

उस अवसर पर हमें यही समझना चाहिए कि बालक दिन पर दिन बढ़ता हुआ बोलना चालना और स्वतंत्रता-पूर्वक घूमना फिरना सीख रहा है और उसे अनेक नई बातों का ज्ञान हो रहा है।

दूसरी अवस्था में बालक की स्थिति।

(१) बालक में सबसे मुख्य, बोलने की शक्ति बढ़ती है। ढाई वर्ष की अवस्था में बालक केवल थोड़े से टूटे फूटे वाक्य बोल सकता है। पर सात वर्ष की अवस्था में वह साधारणतः अच्छी तरह बात चीत कर सकता है। प्रसिद्ध विद्वान् रस्किन ने इसी अवस्था में एक छोटा मोटा काव्य रचा था।

(२) बालक की शारीरिक वृद्धि होती है। वह खूब अच्छी तरह चल फिर और दौड़ सकता है और अनेक कठिन कार्य्य कर सकता है।

(३) उसमें समझदारी आ जाती है और वह संग साथ ढूँढने लगता है। दूसरे मनुष्यों और पदार्थों के

विषय में वह अपनी सम्मति स्थिर करता है और कई मित्र और साथी बना लेता है।

(४) बालक प्रत्येक पदार्थ का वास्तविक स्वरूप, कारण और रचना-प्रणाली आदि जानने के लिए उत्सुक रहता है।

(५) पशुओं और चित्रों आदि को देख कर वह बहुत प्रसन्न होता है।

(६) वह कार्य्य करने का प्रयत्न करता है। यह परीक्षार्थ कार्य्य वह कभी कभी स्वेच्छा से ही करता है। वह दूसरों को जो कार्य्य करते देखता है उसके अनुभव और स्मृति से ही वह स्वयं नए कार्य्य करता है।

(७) उसे सब बातों का, विशेषतः देखी हुई बातों का, खूब ध्यान रहता है। प्रायः सुनी हुई बातों और कार्य्यों का उसे पूरा स्मरण रहता है।

आज्ञाकारिता।

पहले वर्ष में बालक से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं होती। इसके उपरांत उससे कोमल और छोटी छोटी बातें कहनी चाहिएं। किसी अनुचित कार्य्य करने के समय उनसे "नाः" "चुप रहो" "बैठो" आदि ही कहना चाहिए। उस अवस्था में उसमें आपही आप तुरंत आज्ञापालन करने की प्रवृत्ति होती है।

बालक के बड़े होने पर यह प्रश्न कठिन हो जाता है। उस समय वह जिस प्रकार औरों को मिलते जुलते और बात चीत करते देखता है उसी प्रकार स्वयं भी करता है। साधारण खेल या बात चीत के संबंध में सदा उससे भी पूछ लेना चाहिए और यथा-सम्भव उसकी सम्मति का आदर करना चाहिए। आज्ञाकारिता का अर्थ, बालक से ऐसे काम के लिए कहना है जिससे हम उसको सहमत कराया चाहते हैं; और आदर्श दशाओं में बालक तथा माता-पिता में यही संबंध होता है।

ज्यों ज्यों बालक बड़ा होता है त्यों त्यों आज्ञाकारिता के प्रश्न में भी परिवर्त्तन होता जाता है। पहले वह तुरंत आज्ञा मानता है; तदुपरांत वह अप्रिय आज्ञाओं को जोर और दबाव डालने पर मानता है। और अंत में आपका अच्छी शिक्षा पाया हुआ बालक बहुत शीघ्र और स्वच्छन्दता-पूर्वक आपका कहना मानता है। आज्ञाकारिता के अवसर पर उसे भयभीत न कर देना चाहिए; विशेषतः इसलिए कि कभी कभी बुद्धिमान् माता-पिता को भी तुरंत और नम्रतापूर्वक बालकों की बात मानने की आवश्यकता हुआ करती है। इस बात को भूल न जाना चाहिए कि बालक उसी समय सहज में आज्ञाकारी बनाए जा सकते हैं जबकि उनकी उचित आवश्यकताओं पर पूरा पूरा ध्यान दिया जाय।

यदि मनुष्य की बढ़ती हुई शक्तियों को अच्छे कामों की ओर न लगाया जाय तो बहुत संभव है कि वे अनुचित मार्ग में लग जायँ। मान लीजिए कि एक लड़की अपने पिता को कोई काम करते हुए देख कर स्वयं उसके विरुद्ध करती अथवा उसे रोक कर स्वयं वह काम करना चाहती है, जो कुछ उससे कहा जाता है सदा उससे विपरीत चलती है और प्रत्येक बात का कारण और उस कारण का भी कारण पूछती है। साधारणतः ऐसी प्रकृति हानिकारक नहीं होती; बल्कि उसे बहुत शुभ लक्षण समझना चाहिए। पर हाँ, यदि उसपर बिलकुल ध्यान न दिया जाय अथवा माता-पिता बुरी तरह उसका विरोध करें तो उसकी यह विपरीत और आज्ञा भंग करने की प्रकृति बहुत बढ़ और दृढ़ हो जायगी। बहुत अधिक रुकावट से उसमें और भी उत्तेजना मिलती है और प्रकृति में कोई विशेष उत्तम परिवर्त्तन नहीं हो सकता। इसका आरंभ तो अज्ञानता और विनोद से होता है पर अंत में वह दोष और विपत्तिजनक हो जाता है।

जब बालक में इस प्रकार की अनुचित प्रकृति के लक्षण दिखलाई दें तो यथासंभव उसे व्यर्थ और अनावश्यक समझ कर अधिक महत्त्व न देना चाहिए, बिना उसपर विशेष ध्यान दिए उसे चुपचाप रोकना चाहिए और उसके बदले में उसका

ध्यान दूसरे प्रकार के कार्य्यों की ओर फेर देना चाहिए। इस प्रकार थोड़े ही समय में उसका वह दोष दूर हो जायगा। इस स्थान पर यह बात मालूम होती है कि दोष आरंभ में बहुत ही छोटे और तुच्छ होते हैं और उन्हें दूर करने में कठोरता की अपेक्षा बुद्धिमत्ता से कार्य्य लेना चाहिए।

सत्यनिष्ठा का बीजारोपण।

बालक ज्यों ज्यों बड़े होते जायँ त्यों त्यों उनकी इच्छा और रुचि उत्तम अभ्यासों की ओर बढ़ती जानी चाहिए और बुरे और निंदनीय अभ्यासों से उन्हें घृणा होनी चाहिए।

(१) "इच्छा-शक्ति" वाले प्रकरण के आरंभ में बालकों के लिए जो बातें बतलाई गई हैं उनकी ओर उन्हें बहुत अधिक ध्यान देना चाहिए।

(२) अपने तथा दूसरों के लिए वे यथासाध्य जो कुछ कर सकें, उसके लिए उन्हें सदा प्रयत्न-शील रहना चाहिए। उदाहरणार्थ उन्हें केवल इसी लिए साफ़ सुथरा न रहना चाहिए कि उन्हें इसका अभ्यास डाला गया है; बल्कि उन्हें स्वभावतः ही स्वच्छता-प्रिय होना चाहिए।

(३) साधारण कष्टों और कठिनाइयों को उन्हें वीरतापूर्वक सहन करना चाहिए।

(४) उन्हें अधिक सुस्वादु पदार्थों से सदा दूर रहना और सादा भोजन पसंद करना चाहिए।

(५) उन्हें अधिक रात बीते तक जागना न चाहिए और तड़के सोकर उठना चाहिए।

(६) भोजन आदि के समय उन्हें सब लोगों के साथ बहुत भलमनसत और लियाकत से बैठना चाहिए।

(७) उन्हें चपल और प्रसन्नचित्त रहना चाहिए।

(८) माता-पिता तथा अन्य संबन्धियों को उचित है कि जो बालक इस प्रकार के उत्तम व्यवहार करें उन्हीं को वे अपना प्रेम-पात्र बनावें और शेष बालकों के साथ इसके विरुद्ध आचरण करें।

बालक में सत्य-निष्ठा उत्पन्न होने से पहले उसमें उत्तम अभ्यासों का होना परम आवश्यक है; क्योंकि आपके बालक जिन बातों से परिचित होंगे उन्हें तो तुरंत आदरपूर्वक करेंगे और जो बात उनके लिए नवीन होगी उससे वे दूर रहेंगे।

यदि माता-पिता समझदार न हों और उनके सब कार्य्य क्रमविहीन हों, पर सौभाग्यवश उनके बालकों का स्वभाव इससे बिलकुल विपरीत हो, तो उस समय यही होगा कि बालक तो अपनी इच्छा से सब कार्य्य उत्तमतापूर्वक करेंगे पर परि-स्थिति के कारण उन्हें भी उन्हीं पुराने अभ्यासों की ओर प्रवृत्त होना पड़ेगा। उनकी कोमल प्रकृति शीघ्र बिगड़ जायगी, उनके विचार पुराने ढर्रे के हो जायँगे और वे अपने सारे प्रयत्न भूल जायँगे। वे उपस्थित अभ्यासों के ही वशीभूत रहेंगे और बिना किसी प्रकार की आपत्ति के उन्हीं का पालन करेंगे। इसमें संदेह नहीं कि ऐसी दशा में बालक अपने आपको "पाजी" समझने के लिए विवश किए जाते हैं, पर सत्यनिष्ठा के बदले इस प्रकार के तर्कनापूर्ण विश्वास पूरा पूरा काम नहीं दे सकते।

अतः चाहे आप अपने बालक को सत्य की ओर प्रवृत्त करने के लिए कितने ही उत्सुक क्यों न हों और केवल उत्तम अभ्यासों की अल्प उपयोगिता पर आपका कितना ही दृढ़ विश्वास क्यों न हो पर जब तक आप उन्हें उत्तम अभ्यास डाल कर उनका मार्ग न साफ़ कर दें तब तक आपको उनके सत्य-निष्ठ होने की आशा न करनी चाहिए। जब उनमें एक भी बुरा अभ्यास न रह जाय तभी उनके सज्जन होने की इच्छा फलवती हो सकती है और तभी आप उनके सत्यनिष्ठ होने की आशा कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त इस बात के लिए आपको सदा यह भी ध्यान रखना चाहिए कि आपके बालकों में उद्दंड होने की इच्छा कभी न हो। यदि बीच में वे कभी कभी किसी प्रकार का उत्पात कर बैठें तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। हमें सदा इसी बात का प्रयत्न करना चाहिए कि उनमें बुरी बातों का

अभ्यास न बढ़े। यदि बालक या माता-पिता से कभी कोई भूल हो जाय तो उससे अधिक हानि संभावित नहीं।

सचाई ।

दूसरी अवस्था में कदाचित् सबसे बड़ी कठिनाई आपको बालक के झूठ बोलने से होगी। इससे पूर्व बालक में झूठ बोलने की यथेष्ट शक्ति नहीं थी; पर इस दशा में पहुँच कर वह बात जाती रहती है। अब उसमें झूठ बोलने की सामर्थ्य हो जाती है। आरंभ में उसका झूठ बोलना प्रायः स्वाभाविक ही होता है क्योंकि उस अवस्था में वह केवल वही बातें कहता है जो उसके ध्यान में आती हैं। यदि आप उससे पूछें—"यह चीज़ तुम्हें किसने दी?" तो वह घर के किसी न किसी आदमी का नाम जो उसके मन में आवेगा अवश्य बता देगा और उसका यही उत्तर बहुत से अंशों में ठीक भी है।

बहुत से माता-पिता इसी प्रकार की उलटी और झूठी बातें सुनकर बहुत प्रसन्न होते हैं और केवल ऐसे उत्तर सुनने के लिए ही उनसे उलटे सीधे प्रश्न भी करते हैं। यह बात बहुत बुरी है। बालक की इच्छा होती है कि वह बात चीत करना सीखे और इसी लिए भाषण का उद्देश्य और अभिप्राय न जान कर भी वह कुछ न कुछ बोला ही करता है और इस प्रकार उसे आप ही आप झूठ बोलने की आदत पड़ जाती है।

जब बालक कोई अनुचित बात करता और उस पर रोका जाता है तो वह ऊटपटाँग उत्तर देता है और आगे चलकर विशेषतः ऐसे अवसर पर जब कि उसे अपने साथ कोई कठोर व्यवहार किए जाने की संभावना प्रतीत होती है तो वह झूठ बोलने में ही अपनी कुशल समझता है और इस प्रकार उसे धीरे धीरे झूठ बोलने का अभ्यास पड़ जाता है। यदि उससे पूछा जाय कि "यह काम किसने किया?" तो वह तुरंत तोते की भाँति कह देगा कि "भइया ने।" इसलिए ऐसे अवसरों पर ख़ूब सचेष्ट रहने की आवश्यकता होती है।

यदि बालक कायदे से रहे, उसकी रुचि साधारण हो, वह आज्ञाकारी हो और दूसरों की सहायता के लिए सदा तत्पर रहे तो उसे झूठ बोलने का बहुत ही कम अवसर मिलेगा। उसे झूठ बोलने से बचाने के लिए आपको निम्न-लिखित उपाय करने चाहिएँ,—

(क) उनकी भूलों को प्रसन्न होकर सुधारते रहना।

(ख) उनसे कभी सन्दिग्ध प्रश्न न करना।

(ग) यदि वह बिना समझे बूझे आप ही आप कुछ कह बैठे तो उसपर ध्यान न देना।

(घ) कभी झूठ न बोलना और न झूठ का ज़िक्र करना।

यदि बालक कभी कोई साधारण अनुचित कार्य्य करे तो कोमलता और प्रसन्नतापूर्वक उससे यही कहना चाहिए—"तुम भूल कर रहे हो।" "आगे से ध्यान रखना, या ऐसा काम न करना।" यदि आप सब कार्य्य विचारपूर्वक करेंगे तो आपके बालक सदा सचाई का व्यवहार करेंगे। ऐसी बातों से बचाने के लिए आपको उसी समय तक अधिक सचेष्ट रहना चाहिए जब तक कि वे पाँच बरस के न हो जायँ। जब एक बार उन्हें सच बोलने का अभ्यास पड़ जायगा तो फिर वे सदा सचाई का व्यवहार करेंगे।

व्यवस्था और समदर्शिता ।

(क) जिन बालकों की आरंभ से ही इस प्रकार शिक्षा होगी वे यथासाध्य अपने कार्य्य आप ही कर लेंगे। उन्हें यह जानना चाहिए कि हर एक चीज़ कहाँ रखनी चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर कोई चीज़ कहाँ से लेनी चाहिए। खिलौने, किताबें और अपनी दूसरी आवश्यक चीज़ें उन्हें उपयुक्त स्थानों पर रखनी चाहिएँ और काम पड़ने पर वहीं से उठानी और काम करके फिर वहीं रख देनी चाहिएँ। उनका

टहलना, बात करना, कपड़े पहनना, खाना, उत्तर देना, प्रश्न करना, खेलना, काम करना और व्यायाम करना आदि सभी बातें उचित रीति से होनी चाहिएं। जहाँ तक हो सके बालकों को यह सब काम स्वभावतः बुद्धिमत्ता और प्रसन्न चित्त से इच्छापूर्वक और समाप्ति तक धैर्य्य के साथ करने चाहिएँ। उन्हें कभी मैला कुचैला और गंदा न रहना चाहिए और न कड़ाई या रुखाई का कोई व्यवहार करना चाहिए। उन्हें सब चीज़ों का उचित और विचारपूर्वक उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार बालक के हृदय में प्रत्येक वस्तु के लिए आदर और अनुराग उत्पन्न होता है; और यह एक ऐसा गुण है जो प्रायः सभी वीर और सशक्त स्त्रियों और पुरुषों में हो सकता और होता है।

(ख) जो लोग प्रसन्नचित्त रहते हैं उनका आचरण भी उत्तम और शुद्ध रहता है। जब बालक प्रत्येक वस्तु के साथ उत्तम व्यवहार करने लग जायँगे तो प्रत्येक मनुष्य के साथ भी उन्हें न्याय और दयापूर्ण व्यवहार करने का अभ्यास पड़ जायगा। सब लोगों के साथ समान और उचित व्यवहार करने का गुण बहुत ही सादा, उपयोगी और लाभदायक है।

यदि राजनीति, शिक्षा, क़ानून या व्यवहार की बातों में भिन्न जाति, वर्ण या सम्प्रदाय के लोगों के साथ हम किसी प्रकार का भेद-भाव रक्खेंगे तो बालकों के लिए हमारी नीति समझना बहुत कठिन हो जायगा और वे भ्रम में पड़ जायँगे।

साधारण व्यवहार।

बालकों की पहली अवस्था केवल अभ्यास की है और दूसरी अवस्था अभ्यास और आज्ञाकारिता की। इस लिए जो बातें पहली अवस्था के लिए बतलाई गई हैं वही दूसरी अवस्था में भी प्रयुक्त होनी चाहिएं।

(क) स्वच्छता, उत्तम रीति से बोलने चालने, भोजन करने और कपड़ा पहनने, सब चीजों को उपयुक्त स्थानों पर रखने, वचन पूरा करने तथा इसी प्रकार की और सब बातों में आपको सदा व्यवस्था को उत्तेजना देनी चाहिए।

(ख) आपके बालकों को शौकीनी से दूर रह कर सदा सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए, अपव्यय से बचना चाहिए और सब काम परिश्रमपूर्वक करना चाहिए।

(ग) बालकों को स्वयं ही भोजन करना और कपड़ा पहनना चाहिए और इस तरह के और कामों में दूसरों से सहायता न लेनी चाहिए; इस प्रकार वे अपनी बड़ी बड़ी आवश्यकताओं को थोड़े ही में पूरा कर लेंगे और अपनी इच्छाओं को वश में रखना सीखेंगे।

(घ) मुख्यतः आपको उचित है कि संसार के सब जीवों के साथ हार्दिक सहानुभूति और अनुराग रखकर नैतिक गुणों की वृद्धि करें।

इस प्रकार बहुत सरलता से आप सत्यनिष्ठा पर जोर दे सकेंगे और उत्तमोत्तम अभ्यासों की सृष्टि कर सकेंगे।

तथापि इसमें भी कई कठिनाइयाँ हैं। जो बालक आज्ञा पालन नहीं करते उनके और भी अनेक अच्छे अभ्यास छूट जाते हैं और आगे चलकर उन्हें नए अभ्यास डालना बहुत ही कठिन हो जाता है। दोनों दशाओं में आपको इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आदतें एक दम से डाली या छुड़ाई नहीं जा सकतीं। उक्त अवसरों पर या उस अवस्था में जब कि बालक को कही या समझाई हुई बातें स्मरण न रहती हों तो आपको उचित है कि आप उनके कान में समझाकर कहें, उन्हें सुनाकर किसी दूसरे से कहें, उनसे पूछें कि कोई तुम्हारे विषय में क्या समझे या कहेगा अथवा इसी प्रकार के और अप्रत्यक्ष उपाय करें। इससे बालकों को सब बातों का सदा ध्यान रहेगा; और उचित विचारणीय प्रश्न आ पड़ने पर वे भी आपकी भांति गंभीर होकर उसे सोचने लगेंगे।

काम।

इस दूसरी अवस्था में यह बात बहुत आवश्यक है कि बालकों को इतने अच्छे कामों में लगा दिया जाय कि जिनमें उनका सारा समय व्यतीत हो। साधारणतः कपड़े पहनने और उतारने, नहाने धोने, भोजन करने, खेलने कूदने, घूमने फिरने और सोने में ही बहुत सा समय निकल जाता है। पर इन कामों से जो समय बच रहता है, सुशिक्षित बालकों के लिए वही बहुत अधिक है।

आपके बालक जब घर में रहें तो उनके खेलने और रहने के लिए अच्छे कमरों की आवश्यकता है। उस कमरे में सब चीजें इस प्रकार सजाकर रखनी चाहिए कि बालक उन्हें तोड़ फोड़ या और किसी प्रकार बिगाड़ न सकें। यदि उनके लिए किसी अलग खाली कमरे का प्रबंध न हो सके तो किसी कमरे का मध्य भाग उनके लिए बिलकुल खाली कर दिया जाय और उनके खेलने के लिए कुछ ऐसी चीजें वहाँ रख दी जायँ जिनके टूटने फूटने से कोई हानि न हो। विशेषतः ऐसी ऋतुओं में जब कि लड़कों के लिए बाहर निकलना कष्ट-प्रद हो, यह प्रबंध बहुत ही आवश्यक है।

बच्चों के लिए कुछ ऐसी बातों का प्रबंध कर देना चाहिए जिनमें उनका सारा समय लगा रहे।

(१) कुछ ऐसे खेल जिनमें प्रायः सभी योग दे सकें।

(२) अनेक प्रकार के व्यायाम आदि।

(३) किस्से कहानियों आदि में भी कुछ समय बिताना चाहिए।

(४) मट्टी के खिलौने आदि बनाना।

(५) अक्षरों का पहचानना और बहुत साधारण गणित।

(६) एक साधारण गुड़िया, लकड़ी और मट्टी के दो चार खिलौने।

(७) ऐसे साधारण खेल जिनमें बालक आपस में राजा, सिपाही, दूकानदार, शिक्षक, शिष्य और कारीगर आदि बनें।

(८) घर में आनेवाले लोगों से मिलना जुलना और उनके साथ बातें करना।

इसके अतिरिक्त उनके लिए कुछ ऐसे साधनों की भी आवश्यकता है जिनसे उनका ज्ञान बढ़े।

(१) एक नक़शा संसार का, एक एशिया का और एक भारतवर्ष का दीवार पर टँगा रहना चाहिए; कुछ पुस्तकें और पशुओं, पक्षियों तथा वृक्षों के रंगीन चित्र होने चाहिएं। कुछ ऐसे चित्र भी हों जिनमें मनुष्य की ठठरी, अन्य अवयव और पृथिवी के भीतरी भाग के दृश्य हों। तख़्ती, खड़िया, काग़ज़ और पेन्सिल आदि भी आवश्यक हैं।

(२) एक छोटी दूरबीन, एक सूक्ष्मदर्शक यंत्र, एक चकमक, एक गोल (ग्लोब) और सारे जगत का चित्र भी होना चाहिए।

(३) बरस में एक बार यदि सम्भव हो तो किसी चिड़ियाखाने, अजायबखाने या गांव देहात में जाना चाहिए।

(४) कभी कभी किसी छापेखाने, पुतलीघर या और बड़े बड़े कारखानों में भी जाना चाहिए।

(५) जब बालक पाँच बरस के हो जायँ तो उन्हें साधारण पढ़ने, लिखने, हिसाब करने, चित्र आदि बनाने और सीने पिरोने आदि की भी नियमानुसार साधारण शिक्षा दी जानी चाहिए।

बालकों के लिए कुछ काम निश्चित कर देना बहुत ही उपयोगी होता है। इससे वे बहुत शांतिपूर्वक रहते हैं, उनका समय ठीक तरह से बीतता है और वे किसी प्रकार का पाजीपन नहीं कर सकते। वे पढ़ने लिखने और कारबार करने के योग्य हो जाते हैं और उनमें सब प्रकार के सद्गुण आ जाते हैं।

जिस प्रकार वयस्क मनुष्यों के लिए व्यवस्थित कार्य्य आवश्यक और उपयोगी होता है उसी प्रकार

बालकों के लिए व्यवस्थित खेल भी आवश्यक और उपयोगी है। बड़ों की भांति छोटों को भी अपना मन, बुद्धि और शरीर किसी न किसी काम में पूरी तरह लगाए रखने की आवश्यकता होती है।

जिस प्रकार यह सत्य है कि किसी मनुष्य के लिए सदा अकेले रहना अच्छा नहीं है उसी प्रकार यह भी सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य के लिए थोड़ी देर तक एकांतमें शांतिपूर्वक रहना बहुत अच्छा है। इसलिए आपके बालकों को थोड़ी देर के लिए शांति से रहना भी बहुत आवश्यक है। जब वह खेलते खेलते थक जायँ तो उन्हें कुछ देर के लिए किसी कमरे में आराम भी करना चाहिए। इन सब कार्य्यों में बालकों को पूरी स्वच्छन्दता मिलना आवश्यक है।

कार्य्यों में सहायता।

ज्यों ही बालक ढाई तीन बरस के हों त्यों ही उन्हें यह समझाने का प्रयत्न आरंभ कर देना चाहिए कि गृहस्थी और उसके कामों में प्रत्येक मनुष्य को भाग लेना आवश्यक है। अर्थात् बालकों को भी घर के कामों में यथासाध्य उतनी ही सहायता देनी चाहिए जितनी बड़े देते हैं।

जिस प्रकार माता बिना किसी प्रकार का प्रतिफल पाए अपनी संतान के सब कार्य्य करती है उसी प्रकार संतान को भी अपनी माता का काम करने का अभ्यास डालना चाहिए। बालकों को बड़ों की भाँति गृहस्थी का काम करने में किसी प्रकार की कठिनता न बोध करनी चाहिए। इस प्रकार बहुत शीघ्र वे प्रसन्नतापूर्वक परिश्रम और काम करना भी सीख जायँगे।

जहाँ तक हो सके बालकों को अपना सब काम और गृहस्थी का या ऊपरी कुछ काम स्वयं करना चाहिए। यहाँ भी वही व्यापी सिद्धांत आ लगता है कि जहाँ तक हो सके बालक सब लोगों की सहायता करें। पर इसका यह भी तात्पर्य्य नहीं है कि बालक से खिदमतगार की भाँति काम लिया जाय। इसके लिए लोग स्वयं ही सोच समझ कर सीमा निर्द्धारित कर सकते हैं।

दूसरे बालक।

इस अवस्था में एक बालक का दूसरे बालकों के साथ दो प्रकार का संबंध होता है। एक तो वह अपने साथियों के साथ* बहुत सा समय खेल कूद में बिताता है और दूसरे उस समय छोटे बड़े का कोई ध्यान नहीं रह जाता। खेलनेवाले सभी बालक एक समान हो जाते हैं।

ऐसी अवस्था में बहुत संभव है कि बालकों में समदर्शिता न आवे और उनकी दृष्टि बहुत ही संकुचित हो जाय। यह बड़े भारी दोष का आरंभ है। उस दशा में बालक पर आपकी पहली समदर्शितावाली शिक्षा पर बहुत ही कम प्रभाव पड़ेगा और वे कुछ बड़े होने पर विद्यालयों में और बहुत बड़े होने पर संसार में इसी दूसरे संकुचित हृदयतावाले सिद्धांत का व्यवहार करेंगे।

यदि बड़े बालकों को एक दूसरे से मिलने न दिया जाय तो बात और भी बिगड़ जायगी। उनको अपने साथियों के संग रहने देना चाहिए। हाँ, उनपर कभी कभी और विशेषतः आरंभ में दृष्टि रखना आवश्यक है। आपको यह विश्वास करने का दृढ़ प्रयत्न करना चाहिए कि आपके बालक जिस प्रकार आपके साथ सत्यता, नम्रता और सभ्यता का व्यवहार करते हैं ठीक वैसा ही व्यवहार वे अपने साथियों के साथ भी करते हैं। बालकों के परस्पर संबंध और खेल आदि में सत्यता और एक दूसरे के सम्मान का बहुत अधिक ध्यान रहना चाहिए। बालकों के लिए खेल ऐसे होने चाहिएँ जिनसे उनका स्वास्थ्य अच्छा रहे, उनकी बुद्धि बढ़े, वे प्रसन्न रहें और लोगों से मिलना जुलना सीखें। इन खेलों से उन्हें अदब—क़ायदे की भी शिक्षा मिलनी चाहिए।

---

* छूतवाले रोगों से बचाने के लिए छोटे बालकों को दूसरे बालकों से सदा बचाते रहने की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। बहुत से माता-पिता इस बात का बहुत अधिक ध्यान रखते हैं।

एक बार जब आपके बालक इन व्यापी सिद्धांतों का उपयोग अपने खेलों में करने लग जायँगे तो फिर आपको उनके खेलने कूदने आदि से बहुत ही कम भय रह जायगा। बालकों के खेलने का स्थान उनके लिए पहली सामाजिक सीढ़ी है और इसके आगे विद्यालय और उसके संगी साथी दूसरी सीढ़ियाँ हैं। पर जिस समय बालक बहुत ही छोटे हों उसी समय उन्हें इतना योग्य बना देना चाहिए कि उनका नैतिक आचरण किसी प्रकार बिगड़ने न पावे।

बालकों में कभी किसी प्रकार की उदासीनता न उत्पन्न होने देनी चाहिए। वे स्वभावतः प्रसन्न रहना चाहते हैं और उन्हें सदा उसी प्रकार रहने का अवसर मिलना चाहिए। आपके बड़े पद की मर्य्यादा इसी में होनी चाहिए कि आप सदा उनकी प्रसन्नता बढ़ाते रहें। पर साथ ही यहाँ भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सभी कार्य्यों में कभी कभी होनेवाली अकृतकार्य्यता बहुत ही थोड़े महत्त्व की होती है।

सह-योग।

विशेष अवसरों पर एक दूसरे के साथ ख़ूब मिल जुल कर रहने की भी शिक्षा दी जानी चाहिए।

(१) आरंभ से ही बालकों को एक दूसरे के साथ रहने की शिक्षा दी जानी चाहिए।

(२) यदि हो सके तो आप दो तीन बालकों को एक साथ गोद में लें।

(३) आप प्रायः एक से अधिक बालकों को खेलावें।

(४) यदि कोई बात कहें तो कई बालकों से कहें और यदि कोई चीज़ दें तो कई बालकों को दें।

(५) सब बातों में सब बालकों को पारी पारी से सम्मिलित होना चाहिए।

(६) सब बालकों को साथ खेलना और टहलना चाहिए।

(७) किसी खेल या काम में दो या अधिक बालकों को लगाना चाहिए।

(८) उनसे स्वयं सहायता लेनी चाहिए और दूसरों की सहायता करानी चाहिए।

(९) उनसे परस्पर एक दूसरे की सहायता और सेवा करानी चाहिए।

इस प्रकार प्रत्येक अवसर का उपयोग करने से आपके बालक भी आपकी भाँति नीति के इन साधारण सिद्धांतों का उचित उपयोग करने लगेंगे; और ऐसा होते ही यह सिद्ध हो जायगा कि बालकों को उच्च आदर्श बनाना असंभव नहीं है।

आदर्श और उपदेश।

चाहे आप यह न जानते हों कि बालक केवल आपके कामों की ही नक़ल नहीं करते बल्कि आपके आचरणों और विचारों की भी नक़ल करते हैं, पर आप यह अवश्य जानते हैं कि उनकी प्रकृति बहुत ही अनुकरणप्रिय होती है। इस बात का जानना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि इसी अनुकरण से उनका जीवन उत्तम या निकृष्ट होता है। यदि आप ढाई बरस से अधिक के बालकों के कृत्यों पर ध्यान देंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि सुजनता क्रोध, भय, अनुराग और इच्छा तथा विचार-शक्ति की दुर्बलता या सबलता आदि में भी वे सदा आपके अनुगामी रहते हैं। इसलिए यह बात बहुत ही आवश्यक है कि आपकी आवाज़, आकृति, शब्द, चलना फिरना, सहनशक्ति और आचार विचार आदि सभी बातें यथाशक्ति निर्दोष और पूर्ण हों।

आपके उत्तम विचारों और अभ्यासों से इस काम में और भी सहायता मिलती है। आपको सदा दृढ़-निश्चयी होना चाहिए और कभी ऐसे शब्दों का स्वयं व्यवहार न करना चाहिए जो दोष, अनौचित्य, या कष्ट आदि के वाचक हों। आपको सदा अपनी सहनशीलता, धैर्य्य और साहस का परिचय देना चाहिए, सूर्य्यास्त, फूलों, पक्षियों तथा अन्य सभी प्राकृतिक शोभाओं या पदार्थों की प्रशंसा करनी चाहिए, स्वयं परिश्रमी, फुर्तीला, दृढ़, धीर

और सचेष्ट होना चाहिए, छोटे छोटे दुःखों या कष्टों को कुछ न समझना चाहिए, सदा दूसरों की सहायता करनी चाहिए, सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए, अपने विचारों को शुद्ध रखना चाहिए, अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ना और बड़े बड़े महानुभावों के समीप रहना अथवा उनका गुणानुवाद करते रहना चाहिए और इन कामों में और लोगों तथा उनके बालकों की सहायता करनी चाहिए। ऐसा करने से आपके बालक उत्तम मनुष्यों या पदार्थों का आदर करना सीखेंगे और उनमें उक्त सभी गुण आ जायँगे।

पर इन सब बातों को केवल बालक की अनुकरणप्रियता पर ही न छोड़ देना चाहिए बल्कि बीच बीच में इन बातों की ओर उनका ध्यान आकर्षित कराते रहना चाहिए और समय समय पर साधारण शब्दों में अपने उत्तम विचारों से उन्हें अवगत करते रहना चाहिए। पर साथ ही यह बात ध्यान रखने योग्य है कि ऐसा करते समय किसी एक ही बात पर बहुत अधिक वादाविवाद न करना और बालकों की अवस्था का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है।

केवल अपने आदर्श पर निर्भर करना भी कभी कभी वृथा होता है क्योंकि बालक यह नहीं समझ सकते कि उनसे किस प्रकार के आचरण की आशा की जाती है। इसके सिवा किसी का ठीक ठीक अनुकरण करना भी प्रायः बहुत कठिन होता है। इसलिए बालकों के सामने आदर्श उपस्थित करने के साथ साथ उन्हें उपदेश देने की भी आवश्यकता होती है। यदि उन्हें केवल उपदेश दिया जाय और उनके सामने कोई उत्तम आदर्श न उपस्थित किया जाय तो भी उससे हानि ही होगी; वे दूसरों को उपदेश देना तो अवश्य सीख जायँगे पर स्वयं उनके आचरण पवित्र न हो सकेंगे।

इसके अतिरिक्त विरुद्ध या बुरी परिस्थिति में पड़ने से अनजान में पड़ी हुई अथवा कोरी आदतें शीघ्र बदल जाती हैं और केवल ज्ञानयुक्त विचार ही कठिन आक्रमणों का सामना कर सकते हैं। इसलिए अभिज्ञ और अनभिज्ञ दोनों प्रकार के आदर्श, उपदेश और शिक्षा समान रूप से आवश्यक हैं। स्वयं बहुत थोड़ा काम करते हुए बालकों से बहुत कुछ आशा करके अपना बोझ हलका करना और सब बातों को अनभिज्ञ आदर्श और अनुकरण पर छोड़ देना मानों निराशा का आह्वान करना है।

आदर्श या उदाहरण उसी दशा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी हो सकता है जब कि उसके साथ साथ नीति की शिक्षा भी हो। साथ ही यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि आदर्श सर्वोत्तम और सर्वाङ्गपूर्ण होना चाहिए और अपने संबन्धियों तथा और लोगों के साथ भी आपका संबन्ध और व्यवहार वैसा ही होना चाहिए जैसा कि अपने बालकों के साथ होता है। नहीं तो आपके उपस्थित किए हुए आदर्श कई प्रकार के होंगे और बालक उनमें से किसी एक को ग्रहण कर लेंगे।

कुछ लेखकों का मत है कि छोटे बालक स्वभावतः ही बुरे और दुष्ट होते हैं और उनकी सारी प्रवृत्ति स्वयं अपने ही विचारों की ओर होती है; पर जो माता-पिता अपने बालकों के आचरण पर पूरा ध्यान रखते हैं वे समझ लेंगे कि यह मत कितना निस्सार है। अनेक ऐसे छोटे बालक देखे गए हैं जो स्वभावतः ही बुरी बातों या कामों से घृणा करते हैं। इसके अतिरिक्त बालकों में अनुराग और सहानुभूति की मात्रा भी बहुत अधिक होती है। दूसरों को चोट लगने पर वे चिल्ला उठते हैं, दूसरों को मार पड़ते देखकर वे दुखी होते हैं और वयस्क पुरुषों की भाँति अच्छे बुरे का निर्णय करने के चिह्न उनमें पाए जाते हैं।

प्रायः देखा जाता है कि यदि कोई मनुष्य हँसी में किसी बालक पर बहुत अधिक बिगड़ता या उसे मारने पर उद्यत होता है तो वह बालक भी सरलता से तुरंत उसकी हूबहू नक़ल कर बैठता है। मनुष्य के आचरण की सृष्टि उसकी परिस्थिति से ही होती है और उसी के अनुसार उसमें सद्गुण या दुर्गुण आते हैं। आदर्श और उपदेश का महत्त्व इसी कारण है।

शिक्षा और प्रयोग ।

यदि आप सूचना (चेतावनी) और (परीक्षा या प्रयोग द्वारा) अनुभव कराने का भी ध्यान रक्खें तो आप की शिक्षा-पद्धति बिलकुल आधुनिक हो जायगी ।

(क) बालकों को इस बात की शिक्षा देने की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि किस प्रकार स्नान और भोजन आदि करना, कपड़े पहनना और उठना बैठना चाहिए; पर आश्चर्य्य है कि इस प्रकार की शिक्षा का प्रायः सभी जगह बहुत अधिक अभाव है । प्रायः माता-पिता बीच बीच में बालकों को कुछ बातें बतला देना, अनुचित कार्य्य के लिए मना कर देना और भारी भूलों को सुधार देना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं । पर वास्तव में बालकों को ठीक तरह से नहाने धोने और खाने पहनने की शिक्षा देना और इस बात का ध्यान रखना कि वे इन बतलाई हुई बातों को सीखते हैं, या नहीं, बहुत ही आवश्यक और बुद्धिमत्ता का कार्य्य है ।

इस सूचना या हिदायत से हमारा यह तात्पर्य्य है कि जिस पूर्णता और धैर्य्य से बालकों को विद्यालय में गणित या व्यायाम आदि की शिक्षा दी जाती है ठीक उसी प्रकार ध्यानपूर्वक उसे और और बातों की शिक्षा भी दी जानी चाहिए । बालकों को आधे काम के लिए दूना समय व्यर्थ नष्ट करने से केवल इसी प्रकार की शिक्षा बचा सकती है । यदि बालक को केवल आदर्श, उपदेश या अनुकरण पर ही छोड़ दिया जाय और उसे ठीक तरह से शिक्षा न दी जाय तो वह कभी अच्छी तरह नहाना धोना नहीं सीख सकता । इस प्रकार की शिक्षा की उपयोगिता और आवश्यकता आपको ढाई से सात वर्ष तक के बालक के लिए अच्छी तरह से मालूम हो सकती है ।

(ख) वैज्ञानिक लोग परीक्षा द्वारा अनुभव करने पर बहुत अधिक ज़ोर देते हैं और जो अनुसंधान इस प्रकार सिद्ध नहीं होते उन्हें अपूर्ण मानते हैं । इसलिए यदि आप अपने बालकों को आधुनिक विज्ञान के अनुकूल बनाना चाहते हों तो आपको उचित है कि उनकी शिक्षा के लिए परीक्षा द्वारा अनुभव की सहायता से अग्रसर हों ।

केवल आदर्श, उपदेश या समझाने बुझाने की अपेक्षा परीक्षा द्वारा किसी बात का अनुभव करा देना बहुत ही लाभदायक होता है । किसी बात के लिए हिदायत करने या उसे समझाने बुझाने में आप उस बात की केवल एक ही बार शिक्षा देते हैं और उस शिक्षा की पुनः आवृत्ति करने के लिए आपको संभवतः चौबीस घंटे तक ठहरना पड़ता है । उधर इन चौबीस घंटों में बालक बहुत कुछ भूल जाता है । लेकिन परीक्षा द्वारा अनुभव कराने में जब तक कि वह बात भली भाँति बालक की समझ में न आ जाय तब तक आप उसी बालक से वह काम कई बार करा लेते हैं । इसलिए वैज्ञानिक प्रयोगों की भाँति बालकों की शिक्षा में भी अनुभव द्वारा कोई बात सिखलाना बहुत ही उपयोगी होता है । इस प्रकार बालक को स्वच्छता, फ़ुर्तीलेपन, नम्रता, सुजनता, परोपकार और सहनशक्ति की बहुत अच्छी शिक्षा मिल जाती है ।

पहले पहल आप कह सकते हैं कि बालकोंमें परीक्षाद्वारा अनुभव करके कोई बात सीखने की योग्यता नहीं होती और वे धैर्य्यपूर्वक किसी एक ही प्रयोग को अनेक बार नहीं कर सकते । यह बात बहुत अंशों में ठीक भी है । यदि किसी बड़े वैज्ञानिक को बार बार एक ही प्रयोग करना पड़े तो वह भी अवश्य ही घबरा जायगा । पर कुछ अंशों में दूसरी बात भी सत्य है । यदि आप कोई प्रयोग विनोद और कौतुक के रूप में करेंगे, जैसा कि वह वास्तव में है भी, तो वह बालकों के लिए बहुत अच्छा खेल हो जायगा । बालकों को एक ही बात बार बार दोहराना बहुत अच्छा लगता है । यदि आप गिनते जायँ कि अमुक प्रयोग की कितनी आवृत्तियाँ हुईं और साथ ही आप इस बात का भी ध्यान रक्खें कि हर बार में उन्होंने कितनी उन्नति की है तो आपके बालक उसे खेल समझ कर उससे बहुत ही प्रसन्न होंगे । इसके अतिरिक्त प्रयोग में एक यह

भी गुण है कि उससे प्रत्येक प्रश्न का निर्णय बहुत शीघ्र और भली भाँति हो जाता है और इसी लिए उसका व्यवहार भी बहुत ही कम होता है जिसके कारण बालक घबराता नहीं।

(क) प्रत्येक मनुष्य सशक्त होना चाहता है; और इस अभिलाषा का उपयोग शिक्षा-संबंधी कार्य्यों में भी होना चाहिए।

"सशक्त" और "मनुष्य" बनो।

बालकों के हाथ, पैर तथा अन्य अवयवों का पुष्ट होना बहुत ही अच्छा है। शक्ति का प्रदर्शन और उपायों से भी हो सकता है। जो आदमी जल्दी जामे से बाहर हो जाता है वह अवश्य दुर्बल है। पर जो आदमी सदा अपने आपको वश में रख सकता है और किसी दशा में भी विचलित नहीं होता वह बहुत सशक्त है। आलसी होना दुर्बलता का चिह्न है और परिश्रमी होना शक्ति-सम्पन्न होने का चिह्न है। शेखचिल्लियों की तरह पड़े पड़े मन के लड्डू बनाना दुर्बलता का चिह्न है और किसी विषय में भली भाँति विचार करके काम में लग जाना शक्तिमत्ता का चिह्न है। अपनी तथा औरों की सहायता करना भी शक्तिमत्ता का चिह्न है और केवल अपना ही ध्यान रखना और दूसरों से बात न पूछना दुर्बलता का चिह्न है। सदा उचित कार्य्य करना और मानव जाति की उन्नति में लगे रहना शक्तिमत्ता का चिह्न है और अनुचित कार्य्य करना तथा दूषित प्रवृत्तियों के अधीन हो जाना दुर्बलता का चिह्न है।

तीन बरस के बालक के लिए भी "सशक्त" होने का उतना ही उत्तम अभिप्राय है जितना कि तीस बरस के पुरुष के लिए। अतः यह बात बहुत आवश्यक है कि बालकों का ध्यान सदा इस ओर आकर्षित किया जाय कि अपने आपको वश में रखने और दूसरों की सहायता करने में शक्ति प्रकट होती है और अपने आपको वश में न रख सकने और केवल अपने स्वार्थ का ध्यान रखने से दुर्बलता प्रकट होती है। प्रायः लोग कहा करते हैं कि स्वभावतः मनुष्य सज्जन होने की अपेक्षा सशक्त होना अधिक पसंद करते हैं। पर आप अपने बालकों पर यह बात प्रमाणित कर सकते हैं कि यदि वे सशक्त, बलवान् और महानुभाव हुआ चाहते हैं तो उन्हें केवल सत्य का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

(ख) दूसरी अभिलाषा जो सब में होती है वह "मनुष्य" होने की है; और इस गुण को प्रायः लोग सुजनता का विरोधी समझते हैं।

आप स्वयं विचार कीजिए कि मनुष्य और पशु में क्या भेद है। पशु केवल अपने शरीर और प्रवृत्तियों पर ही निर्भर करता और सदा उन्हीं के वश में रहता है। यदि किसी मनुष्य का पालन पोषण सभ्य संसार से बाहर हो तो वह पशु से भी गया बीता हो जायगा क्योंकि उसे मार्ग दिखलाने के लिए किसी प्रकार की निश्चित प्रवृत्ति नहीं होगी और वह बहुत ही भद्दी तरह से अपनी इन्द्रियों को संतुष्ट करेगा। पशु की अपेक्षा मनुष्य में यही विशेषता है कि उसने बहुत से आविष्कार किए हैं और अनेक नई बातों का पता लगाया है। मनुष्य की सृष्टि दूसरों के साथ मिलकर काम करने और उनसे कुछ सीखने के लिए हुई है। वह अपनी समझ से काम लेने और किसी विशिष्ट आदर्श पर चलने के लिए बनाया गया है। यदि उसमें ये गुण न हों तो वह पशु-तुल्य है।

इसलिए "मनुष्य" बनने का अभिप्राय यह है कि—"अपनी असंस्कृत प्रवृत्तियों, वासनाओं और इंद्रियों के वशीभूत न हो। कोई काम बिना समझे बूझे या उतावलेपन से न करो। केवल अपने स्वार्थ का ही ध्यान न रक्खो। अपने जीवन को आदर्श बनाओ; अपने सब कार्य्य उसी आदर्श के अनुसार करो तब जाकर तुम वास्तव में मनुष्य होगे। जितना अधिक तुम आदर्श को अपना पथदर्शक बनाओगे उतना ही अधिक तुम मनुष्य बनोगे। और आदर्श का जितना ही कम ध्यान रक्खोगे उतना ही अधिक

तुम मनुष्यत्व की श्रेणी से नीचे गिरोगे। इसलिए तुम हिंसक पशु न बनो। मनुष्य बनो।

मनुष्य के इस वास्तविक स्वरूप का ध्यान रख कर आप कुछ समय में अपने बालकों को इस सिद्धांत का पक्षपाती बना सकेंगे। आप उनसे समय समय पर कह सकते हैं कि मनुष्य सीखता है, काम करता है, दूसरों को सहायता पहुँचाता है और अपने आपको वश में रखता है, आदि। बड़ों की तरह बालक भी अपने वर्ग के सच्चे प्रतिनिधि बनना पसंद करते हैं।

ज्यों ज्यों आपके बालक बड़े होते जायँ त्यों त्यों आप उन्हें भली भाँति यह बात समझाते जायँ कि वास्तव में "सशक्त" और "मनुष्य" होना किस को कहते हैं। आपका आधा उद्देश्य इसी से सफल हो जायगा।

मन।

पहली अवस्था में ढाई बरस की उमर तक बालक बोलचाल नहीं सकता इसलिए उस समय तक प्रत्यक्ष रूप से उसे कोई बात नहीं सिखलाई जा सकती। पर दूसरी अवस्था में वह बात नहीं होती। उस समय आप बहुत भारी भारी प्रयोगों और जटिल विचारों को छोड़कर बाकी सब बातें उन्हें भली भाँति सिखला सकते हैं।

(क) पहली अवस्था की समाप्ति से कुछ पहले ही बालक सब चीज़ों के विषय में अनेक प्रकार के प्रश्न करने लग जाता है। इसलिए वह अवसर बहुत ही बहुमूल्य है; उस समय हम नीचे लिखे उपायों से उसका यह शौक़ बढ़ा सकते हैं।

(१) बालकों की भाँति स्वयं भी सब बातों और कार्य्यों में लगकर,

(२) बालक के शौक़ की प्रवृत्ति का ध्यान रखकर,

(३) प्रत्येक विषय की व्याख्या में इतना अधिक शौक़ बढ़ाकर कि जिसमें वह उसे भली भाँति समझ जाय और

(४) कोई बात समझाने के बाद फिर उसी से पूछकर।

दूसरी अवस्था की समाप्ति तक बालक जितनी बातें सीख सकता है यदि उसका मुकाबला किसी वयस्क मनुष्य की जानकारी से किया जाय तो बहुत कौतूहल होता है। उस समय तक बालक को कम से कम नीचे लिखी बातों का ज्ञान अवश्य हो सकता है—

(१) कम से कम अस्सी प्रकार के फूलों, फलों, वृक्षों, घासों और तरकारियों आदि का,

(२) प्रायः बीस तरह की चिड़ियों और पचास तरह के दूसरे जानवरों का,

(३) सूर्य्य, चन्द्र, तारे, छाया, वर्षा, बरफ़, कुहरा, इन्द्रधनुष, आकाश, मेघ, हवा, चट्टान, जमीन, सर्दी, गरमी और इन्हें नापने के यंत्रों तथा इसी प्रकार की और बहुत सी चीज़ों का,

(४) शरीर के बहुत से अवयवों का,

(५) भूगोल संबन्धी बहुत सी बातों का,

(६) पढ़ने, लिखने और साधारण गणित का और

(७) बहुत सी साधारण बातों का (जिनमें नीति संबन्धी विचार, श्लोकों तथा उत्तम कथाओं आदि का भी समावेश हो सकता है।)

प्रत्येक विषय की बहुत सी बारीकियाँ और विशेषताएँ बतलाकर आप बालकों को सब बातों का भली भाँति ऊँच नीच और गुण दोष समझने के योग्य बना सकते हैं। इस अभिप्राय के साधन के लिए उन्हें वृक्षों के तनों, डालियों, पत्तियों तथा भिन्न भिन्न फूलों के आकार, प्रकार और रंग आदि का ज्ञान कराने के अतिरिक्त निम्न-लिखित उपाय भी किए जा सकते हैं—

(१) ऋतुओं के प्रधान प्रधान परिवर्त्तनों और उनके कारण, पत्तियों और फूलों के लगने, गिरने, या रंग बदलने और किसी छोटे विशिष्ट वृक्ष की किसी विशेषता पर प्रत्येक ऋतु में मनन करना।

(२) पशुओं के बच्चों की विशेषताओं आदि पर ध्यान रखना।

(३) इस बात की शिक्षा देना कि प्रत्येक वस्तु सदा व्यवहार में लाते रहने से घिस या घट जाती है।

यदि नित्य की बातचीत में 'दहिना, बायाँ, पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, क्षितिज, चैाकोर, तिकोना, टेढ़ा, सीधा' आदि शब्दों का व्यवहार किया जाय अथवा छड़ी, छाता, घड़ी या शरीर के अवयवों आदि का ज़िक्र किया जाय तो बालकों का ज्ञान बहुत कुछ बढ़ सकता है। इसके सिवा वनस्पतिशास्त्र, रसायन, विज्ञान, भूगोल, ज्यौतिष आदि अन्य विषयों के मुख्य मुख्य पारिभाषिक शब्दों से भी उन्हें परिचित कराया जा सकता है।

बालकों को केवल बहुत से शब्द रटाने से ही काम नहीं चल सकता; उनसे उन शब्दों का स्पष्ट श्रौर उपयुक्त उपयोग भी कराना चाहिए। जब कभी आवश्यकता पड़े तो उनके सामने हर एक चीज़ को नाप, तैाल या गिन भी लेना चाहिए। पुस्तकें आदि पढ़ने पर विशेष ध्यान रखना चाहिए श्रौर प्रयोग आदि के लिए श्रौर बहुत से अवसर निकालने चाहिएँ।

(ख) जिन बालकों को इस प्रकार शिक्षा दी जाती है यदि उनसे किसी विषय में कोई बात पूछी जाय तो वे उसका बहुत ही उपयुक्त उत्तर देते हैं। उनका उत्तर इतना ठीक होता है कि उसे सुनकर लोग प्रसन्न हो जाते हैं। यदि किसी बालक को इस बात का अवसर दिया जाय कि वह किसी पदार्थ का कोई श्रौर एक गुण अथवा किसी एक घटना का कोई श्रौर एक कारण ढूँढ़ निकाले तो वह उसे मनोविनोद समझकर बहुत ध्यान से सोचने लग जाता है श्रौर अंत में गुण या कारण आदि ढूँढ़कर बहुत प्रसन्न होता है। बालकों से बराबर इस प्रकार के प्रश्न करना बहुत लाभदायक होता है। इस प्रकार के प्रश्न करते करते माता-पिता भले ही थक जायँ पर उत्तर देने में बालक कभी नहीं थकते।

(ग) परस्पर दो चीज़ों का मुक़ाबला करके उनके गुण दोष जानने के प्रायः बहुत से अवसर मिलते हैं; श्रौर शिक्षा देने का यह भी एक बहुत अच्छा प्रकार है। अगर आपका बालक बाजार में घूमने की अपेक्षा बाग में टहलना अथवा बाग में टहलने की अपेक्षा बाजार में घूमना अधिक पसंद करता हो तो आप उससे उसके कारण आदि पूछ सकते हैं। इसी प्रकार आप उनसे गृहस्थी के सब मनुष्यों, कपड़ों अथवा दूसरे पदार्थों में भेद श्रौर उनके गुण दोष आदि पूछ सकते हैं।

(घ) सब चीज़ों का सम-विभाग अथवा उन्हें श्रेणी-बद्ध करना कुछ कठिन काम है क्योंकि इसमें अधिक स्मरण श्रौर ज्ञान रखने की आवश्यकता होती है। तोभी यदि बालकों को सब बातों के अंग प्रत्यंग भली भाँति बतलाए जा चुके हों तो उनसे यह कार्य्य भी कराया जा सकता है। यदि वे कहें कि तोते के दे पैर होते हैं तो उनसे पूछना चाहिए कि कैावे आदि के कितने पैर होते हैं। इस प्रकार धीरे धीरे उन्हें पक्षीमात्र के दे पैरों के होने का ज्ञान हो जाता है। इसी तरह आगे चलकर उन्हें गैाश्रों, बैलों श्रौर घोड़ों तथा दूसरे चैापायों के विषय में भी ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार का सम-विभाग सब प्रकार के पेड़ों, पशुश्रों तथा अन्य सभी ऐसे पदार्थों का हो सकता है जिनसे बालक परिचित हों। इस प्रकार वे प्रत्येक वस्तु के यथार्थ भेद जान सकेंगे श्रौर उनका ज्ञान बढ़ेगा। पर इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि इस कार्य्य में वे अधिक सचेष्ट श्रौर उत्सुक रहें।

बालकों को जो बातें दिखलाई, समझाई या सुनाई जायँ उन्हें वे केवल मट्टी के पुतले की तरह देख, समझ या सुन न लें; इस काम के लिए उनकी विचार-शक्ति को पुष्ट करने की आवश्यकता होती है। पहली अवस्था के लिए बतलाई हुई बातों के सिवा उन्हें रोचक शब्दों में कहानियों की भाँति ऐतिहासिक घटनाएँ सुनानी चाहिएँ। साधारण किस्से कहानियों से इस संबन्ध में कोई विशेष लाभ नहीं होता। बालकों को प्राचीन रीति, नीति, व्यवहार श्रौर विश्वास आदि से परिचित कराना चाहिए।

इस प्रकार की कहानियों के संबन्ध में एक बात श्रौर है। बालकों को कहानियाँ बहुत प्रिय होती हैं। यदि आप उन्हें बहुत सी मनोहर बातें साधारण रूप में बतलावें तो वे बड़ी प्रसन्नता से उन्हें सुनेंगे। टहलने आदि के समय तथा श्रौर अवसरों पर हिमालय, पुरी श्रौर इंगलैण्ड आदि की कल्पित यात्रा, तथा व्यास, मनु आदि महात्माओं की भेंट के बहाने से आप उन्हें बहुत सी उपयोगी बातें बतला सकते हैं। उन्हें ऐसी पुस्तकें दिखलानी श्रौर पढ़ानी चाहिएँ जिनमें पशुओं, पक्षियों श्रौर प्राकृतिक दृश्यों आदि के वर्णन श्रौर सुन्दर चित्र आदि हों।* समाचारपत्रों आदि अथवा अन्य मार्गों से आपको जो नई बातें मालूम हों उन्हें भी आप बालकों को सूचना की भाँति नहीं, बल्कि विचित्र श्रौर मनोहर कहानी के रूप में सुना सकते हैं।

बहुत ही साधारण कहानियाँ भी बहुत सी रोचक बातें मिलाकर बालकों को सुनाई जा सकती हैं। बालकों के विचार श्रौर आचरण ख़ूब पुष्ट करके उन्हें जीवन की कठिनाइयों श्रौर विपत्तियों का हाल सुनाना चाहिए। इस प्रकार उनमें उन्नति, सुधार श्रौर विचार करने की शक्ति बढ़ेगी। अपनी बाल्यावस्था की घटनाओं श्रौर अनुभव आदि का जिक्र भी समय समय पर बालकों के सामने करना चाहिए। ये बातें ऐसे रोचक ढंग से कही जायँ कि जिसमें बालक स्वयं बार बार वे बातें पूछा श्रौर दोहराया करें। बालकों के सामने लंबे चौड़े उपदेश या व्याख्यान आदि कभी न देने चाहिएं।

पर इन सब बातों से स्मरण-शक्ति को बहुत ही थोड़ा लाभ पहुँच सकता है। ये बातें उनकी स्मरण-शक्ति को बढ़ाने, पुष्ट करने श्रौर उसका ठीक उपयोग करने में बहुत ही थोड़ी सहायता दे सकती हैं। इसलिए उनके सामने आधुनिक घटनाओं का जिक्र कई बार करना चाहिए श्रौर प्रायः अनुपस्थित मनुष्यों या पदार्थों का हाल भी सुनाते रहना चाहिए। बीच बीच में बालकों से भी कहना चाहिए कि वे उन सुनी हुई बातों को दोहरावें।

बालकों का अधिकांश समय प्रायः पढ़ने, लिखने, टहलने, किस्से कहानियां सुनने, व्यायाम करने, चित्र आदि देखने श्रौर संभव हो तो बनाने तथा अनेक प्रकार के निर्दोष खेल खेलने में बीतना चाहिए। अपने सब बालकों के सुभीते के लिए सब प्रकार के कार्य्यों का एक क्रम बना लेना चाहिए। बालकों को शिक्षा देने के समय इस सिद्धांत का ध्यान रखना चाहिए कि बहुत छोटी अवस्था से ही किसी न किसी रूप में उनकी शिक्षा आरंभ हो, आरंभ में ही वे थक या उकता न जायँ श्रौर ज्यों ज्यों पहले की बतलाई हुई बातें वे सीखते जायँ त्यों त्यों उन्हें श्रौर नई बातें बतलाई जायँ।

यह बात भी बहुत आवश्यक है कि पढ़ने आदि के समय लड़का खेलने न लगे नहीं तो उसका समय भी व्यर्थ नष्ट होगा श्रौर शिक्षक का भी। हाँ, स्वयं शिक्षा ही खेल या विनोद के रूप में होनी आवश्यक है। कदाचित् यहाँ यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि शिक्षक बहुत होशियार, जानकार श्रौर धीर होना चाहिए।

सात से इक्कीस वर्ष तक की अवस्था।

केवल एक अभ्यास।

बालकों को बहुत सी श्रौर एक दूसरे से असंबद्ध आदतें कभी न डालनी चाहिएं क्योंकि इससे बालक घबरा जाते हैं। आवश्यकता एक ऐसे छोटे श्रौर सरल उपाय की है जो बुरी

---

* दुःख है कि अन्यान्य विषयों की पुस्तकों के साथ साथ हिन्दी में इस प्रकार की पुस्तकों का भी एकदम अभाव है। अँगरेज़ी में J. C. & E. C. Jack, London द्वारा प्रकाशित The Look About Your Nature Books श्रौर Shown to the Children सीरीज़ की पुस्तकें तथा Macmillans & Co., की Science Readers आदि पुस्तकें इस संबन्ध में बहुत ही उपयोगी हैं।

आदतों को रोक सके और भली आदतों को बढ़ा सके। यह उपाय बालक का ध्यान और लक्ष्य एक आदर्श जीवन पर रखाना है जिससे कि बुरी आदतें आपसे आप छूट जायँगी और अच्छी आदतें पड़ जायँगी।

तीसरी अवस्था के आरंभ में एक साधारण आदर्श की ही आवश्यकता होती है ; अधिक ज़ोर इस बात पर देना चाहिए कि उनके सब कार्य्य क्रमयुक्त और व्यवस्थित हों, वे सत्यप्रिय हों और दूसरों से प्रेम करना सीखें। शेष सभी गुणों को इन तीनों गुणों के अंग समझना चाहिए। इसके सिवा उन्हें सदा सत्यता-पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए उत्तेजित करना चाहिए क्योंकि बहुत से छोटे छोटे स्वतंत्र अभ्यासों की अपेक्षा केवल सत्य जीवन का विचार बहुत ही उपयोगी और यथेष्ट है।

उक्त तीनों गुणों को भी केवल एक आधार पर लाकर अवलंबित कर देना चाहिए और वह आधार 'व्यवस्था' है जिसका अभिप्राय यह है कि चित्त, जीवन, नगर, समाज, देश और यहाँ तक कि मानव जाति भर को व्यवस्थित रहना चाहिए। दूसरे अर्थ या शब्दों में इसे सहयोग या सहकारिता भी कह सकते हैं।

बालकों और बालिकाओं के लिए जीवन के बड़े और गूढ़ रहस्य उसी समय खुल जाने चाहिएं जब कि वे बढ़कर युवा और युवतियाँ अथवा पुरुष और स्त्रियाँ हों। उसी समय आपको जीवन के इस मुख्य सिद्धांत पर भी पूरा जोर देना चाहिए कि प्रत्येक कार्य्य, विचार, भाषण और लेख आदि में प्रत्येक मनुष्य का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य केवल यही होना चाहिए कि वे दृढ़ता, बुद्धिमत्ता, सहानुभूति और योग्यता-पूर्वक केवल वही कार्य्य करें जिसके पक्ष में उनका जागृत और प्रकाश-पूर्ण मनोदेवता हो। मनुष्यत्व का वास्तविक अर्थ यही है और इसी को अपना आदर्श बनाना चाहिए।

युवावस्था के विशेष गुण।

पहली और दूसरी अवस्था के लिए जो बातें बतलाई गई हैं, तीसरी अवस्था के आरंभ में भी वह बातें भूल न जानी चाहिएं। व्यवस्था, सादा जीवन (जिसमें परिश्रम-पूर्वक कार्य्य करना और प्रसन्न रहना आदि बातें सम्मिलित हैं) और परोपकार आदि पहली और दूसरी अवस्था की भांति तीसरी अवस्था में भी बहुत आवश्यक हैं। उस समय आप यह मान लेते हैं कि पहली और दूसरी अवस्था में बालक में बहुत से गुण आ गये हैं और अब उन्हींके विकसित और उन्नत करने की आवश्यकता है।

ऊपर कहे हुए अनेक गुणों के अतिरिक्त और भी कई गुण ऐसे हैं जिन पर कि इस अवस्था में बहुत अधिक जोर दिया जाना चाहिए।

(१) सब से मुख्य बात यह है कि जिस काम को मनुष्य युक्ति-युक्त और ठीक समझे उसे बिना किसी प्रकार का आगा पीछा सोचे हुए कर डाले। इस प्रकार बालक बहुत से अच्छे कार्य्य कर डालेंगे और बुरे कार्य्यों से बचे रहेंगे।

(क) यदि व्यवस्था, सत्यता, परिश्रम, शुद्धता, धार्म्मिकता, उत्तम संगति, विद्या, कला और प्रकृति पर प्रेम तथा सदा उत्तम कार्य्यों में लगे रहने को सत्य और उत्तम गुण मान लिया जाय तो इस सिद्धांत का यह अभिप्राय है कि आवश्यकता पड़ने पर बालक अपने सिद्धांतों की पुनरावृत्ति करने न बैठ जायँ। उन्हें पहले उचित है कि वे कोई कार्य्य करें और तब जिस प्रकार चाहें विचार करें कि भविष्य में वे किस प्रकार कार्य्य करेंगे। यदि अपनी कोई अनुचित वासना पूरी करने के बाद बालक इस बात पर विचार करें कि उनका वह कृत्य युक्तिसंगत था वा नहीं और भविष्य में वे किस प्रकार कार्य्य करेंगे तो वे उस प्रकार की वासनाएं करना बहुत से अंशों में छोड़ देंगे।

इसका तात्पर्य्य यह है कि किसी कार्य्य करने के उचित और अनुचित उपाय के निर्णय का भार बालकों पर ही छोड़ देना चाहिए और वह कृत्य करने के समय कभी उनसे पूछताछ न करनी चाहिए। और यदि हमें किसी सत्य का निर्णय करने में महीनों या बरसों लगे हों तो उसे अपना आदर्श बना कर कार्य्य रूप में परिणत करने से पहले हमें महीनों या बरसों उसपर .खूब विचार कर लेना चाहिए।

(ख) तीसरी अवस्था का प्रधान आवश्यक गुण "सत्यता" भी है जिसका तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य में सत्य के प्रति भरपूर अनुराग रहे।

इस गुण के प्रभाव से आपके बालक (१) कभी कोई बात आपसे न छिपावेंगे; (२) कभी कोई बुरा या नीच कर्म्म न करेंगे; (३) बुरे आदमियों का साथ छोड़ देंगे; (४) किसी प्रकार के बुरे गुप्त कार्य्यों में सम्मिलित न होंगे; और (५) वे सदा परस्पर और दूसरों के साथ ईमानदारी से रहेंगे।

माता-पिता, साथियों, संबंधियों तथा और लोगों के साथ उनका व्यवहार निष्कपट और निष्कलंक होना चाहिए। यदि वे एक बार सत्यनिष्ठ हो जायँ तो आपको इस बात पर भी .खूब ध्यान रखना चाहिए कि वे पाठशाला में तथा उसके बाहर उत्साहपूर्वक पढ़ने और शिक्षा प्राप्त करने में लगे रहें।

इसके अतिरिक्त उस अवस्था के लिए और भी अनेक आवश्यक गुण हैं; यथा,—विचारों, कार्य्यों और बातचीत में पूरी सत्यता, सब प्रकार के मादक द्रव्यों से दूर रहना, पढ़ने लिखने और दूसरे कामों में .खूब जी लगाना, योग्य और प्रतिष्ठित लोगों का साथ करना आदि। यह सब गुण एक मात्र "सत्यता" की सहायता से ही आ सकते हैं।

(ग) सत्य से मिलता जुलता गुण माता-पिता पर श्रद्धा और विश्वास रखना भी है। युवावस्था में यह गुण बहुत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। सयाने बालकों को बिना आपकी सम्मति के कभी किसी प्रकार का बड़ा कार्य्य न करना चाहिए। इस प्रकार अन्य उपायों की अपेक्षा आप कहीं उत्तमता से उनके आचरण सुधार सकते हैं। सच्चे और श्रद्धालु बालक बड़े दृढ़ और साहसी होते हैं और झूठी अथवा ऐसी बातों से बहुत घृणा करते हैं जो अपने माता-पिता से छिपाने योग्य हों।

(घ) बालक ज्यों ज्यों बड़े होते जायँ त्यों त्यों उनमें विचारों की पवित्रता का बढ़ना भी बहुत आवश्यक है। उन्हें सदा दूसरों की आवश्यकताओं, विचारों और मानसिक स्थिति का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए और सदा औरों के प्रति यथोचित सहानुभूति प्रदर्शित करनी चाहिए।

(च) तीसरी अवस्था की नैतिक शिक्षा की पूर्त्ति की लिए दो और गुण भी आवश्यक हैं। एक तो उचित उपाय से जीविका उपार्जित करने का विचार उनमें .खूब दृढ़तापूर्वक होना चाहिए और दूसरे उन्हें अपने व्यापार या कारबार में .खूब ईमानदार और होशियार होना चाहिए। इस अवस्था के अंत में एक दृढ़ और बुद्धिमान् नागरिक के लिए परोपकारी और दूसरों का सहायक होना भी आवश्यक है जिसका फल मनुष्य-जाति की एकता और उन्नति है।

माता-पिता और शिक्षा-काल।

अब वह समय आ गया है कि जिसमें प्रत्येक बालक के लिए पाठशाला जाना परम आवश्यक है और सात वर्ष की अवस्था में पाठशाला जाना आरंभ हो जाना चाहिए। इस अवस्था से आगे गृह-शिक्षा के बहुत से अंशों को भी बालक की पाठशाला-शिक्षा के साथ सम्मिलित कर देना चाहिए।

पाठशाला में जानेवाले बालकों के लिए .खूब साफ़ सुथरा रहना बहुत आवश्यक है। इसके सिवा उन्हें समय की भी पूरी पूरी पाबंदी करनी चाहिए। पाठशाला में उन्हें कभी अनुपस्थित न होना चाहिए। माता-पिता को इस बात पर पूरा

पूरा ध्यान रखना चाहिए कि उनके बालक नियमित रूप से पढ़ने जाया करें क्योंकि शिक्षक लोग प्रत्येक बालक पर अलग अलग इतना अधिक ध्यान नहीं रख सकते। जो बालक बीच बीच में पाठशाला नहीं जाते वे पिछड़ जाते हैं श्रौर छूटे हुए पाठों को फिर से याद करना उनके लिए बहुत कठिन हो जाता है। कभी कभी इस कारण पाठशाला की कक्षाओं में भी बहुत अव्यवस्था फैल जाती है।

यदि बालकों का भोजन सादा श्रौर अच्छा हो, वे खूब खुली श्रौर ताज़ी हवा में रक्खे जायँ, उनसे व्यायाम कराया जाय श्रौर उन्हें छूतवाले तथा अन्य रोगों से रक्षित रक्खा जाय तो उनकी पढ़ाई में भी बहुत कुछ सरलता श्रौर सहायता हो सकती है। जहाँ तक हो सके बालक को खूब शिक्षा देनी चाहिए, समय समय पर स्कूल के हेड मास्टर तथा अन्य शिक्षकों से मिल कर बालक का हाल चाल पूछते रहना चाहिए, बालकों के पढ़ने लिखने में स्वयं भी उनकी सहायता करनी चाहिए श्रौर उनके साथ पढ़ना लिखना चाहिए, उनसे पाठशाला आदि के संबंध में बातें करनी चाहिएँ श्रौर उन्हें मानसिक श्रौर नैतिक उन्नति के लिए सदा उत्साहित करते रहना चाहिए। यदि चित्र-विद्या अथवा इसी प्रकार की श्रौर किसी कला की श्रोर बालक की विशेष रुचि हो तो उसे उसी की विशेष शिक्षा दिलवानी चाहिए। उसमें प्रकृति श्रौर कला आदि के प्रति अनुराग उत्पन्न करना चाहिए।

घर पर भी बालकों के पढ़ने लिखने का पूरा प्रबंध श्रौर सामान होना चाहिए। भिन्न भिन्न प्रदेशों के मान-चित्र, इतिहास, विज्ञान, शिल्प तथा साधारण ज्ञान संबंधी अच्छी अच्छी पुस्तकें, संस्कृत आदि की छोटी छोटी उत्तम पुस्तकें, सूक्ष्मदर्शक यंत्र आदि का संग्रह आवश्यक है। बालकों के खेल श्रौर विनोद आदि का भी कुछ प्रबंध रहना चाहिए।

बालकों को भी उचित है कि वे सब बातों में अपने छोटे भाइयों श्रौर बहनों की सहायता किया करें श्रौर यथाशक्ति गृहस्थी के कामों में हाथ बँटाया करें। सब बालकों में परस्पर एकता श्रौर सहानुभूति होनी चाहिए। जब बालकों का शिक्षा-काल समाप्ति पर हो तो उनके भविष्य जीवन के संबंध में उनसे बातचीत करनी चाहिए।

इससे पहले बालक केवल आपके ही निरीक्षण में रहते थे; पर अब उन्हें बहुत से सहायक, पथ-दर्शक श्रौर आदर्श मिल जाते हैं श्रौर बहुत संभव है कि उनमें से कुछ लोग अविश्वस्त हों। इसलिए यह बात बहुत आवश्यक है कि आप स्वयं ऐसे लोगों से प्रीतिभाव रक्खें श्रौर बालकों को मिलने जुलने दें जो आप के शुभचिंतक हों श्रौर आपके बालकों के दोष दूर करके उनमें गुण उत्पन्न करें।

विद्यालय श्रौर घर।

विद्यालय श्रौर घर की सब बातों में समानता होनी चाहिए श्रौर इससे बढ़ कर श्रौर कोई अच्छी बात नहीं है कि दोनों स्थानों की प्रणालियाँ एक समान हों। अभी तक लोगों का ध्यान इस श्रोर नहीं गया है। इसी से घर के लिए कोई प्रणाली निश्चित ही नहीं होती श्रौर कदाचित् इसी कारण विद्यालय में भी घर की स्थिति पर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। वास्तव में माता-पिता को वर्त्तमान स्थिति का बहुत ही कम ज्ञान होता है श्रौर वे विद्यालय के उद्देश्यों श्रौर कार्य्यों से अपरिचित ही होते हैं।

यूरोप अमेरिका आदि सभ्य देशों में लोग इस बात का प्रयत्न करते हैं कि बालकों के अभिभावकों की सभाएँ बनें जिनके प्रतिनिधि समय समय पर शिक्षा विभाग के अधिकारियों से मिल कर इस बात का प्रयत्न करें कि बालकों के लिए विद्यालय श्रौर घर की प्रायः सभी बातें समान रूप में हों। अमेरिका के संयुक्त राज्य में बालकों के अभिभावकों को समय समय पर विद्यालय में निमंत्रित करने की प्रथा है। सभ्य देशों में लोग इस बात का उद्योग करते हैं कि संध्या समय अभिभावक श्रौर शिक्षक एक स्थान पर एकत्र होकर आपस में बात चीत

किया करें और घर तथा विद्यालय-संबंधी वक्तृताएँ दिया करें। अभिभावकों के यहाँ शिक्षक और शिक्षकों के यहाँ अभिभावक आया जाया करें। कम से कम प्रधान शिक्षकों और उनके सहकारियों को तो नियमपूर्वक अभिभावकों से अवश्य मिलना चाहिए।

तथापि यह सब बातें बहुत साधारण हैं। घर में यथेष्ट शिक्षा का अभाव, व्यवस्थित शिक्षा का सारा भार मानों विद्यालय पर छोड़ देता है। इसलिए विद्यालय में जानेवाले बालक प्रायः अयोग्य ही निकलते हैं और उनकी व्यवस्थित शिक्षा में शिथिलता होती है। साधारणतः शिक्षा का आरंभ जन्म से ही होना चाहिए। यदि बालक की सात वर्ष की अवस्था तक उसपर कुछ भी ध्यान न दिया जाय तो विद्यालय क्या, और भी कोई शक्ति उसका कल्याण नहीं कर सकती। इसलिए इस बात की सबसे अधिक आवश्यकता है कि विद्यालय और घर की शिक्षा-प्रणाली प्रायः एक ही समान हो।

विचार, तुलना, निर्णय, सम-विभाग, स्मरण-शक्ति आदि तथा भली भाँति बातचीत करने की शिक्षा बालकों को घर में ही मिलनी चाहिए और विद्यालय में जाने से पहले उन्हें प्रकृति, मानवजाति तथा संसार संबंधी बहुत सी बातों का ज्ञान होना चाहिए। यदि इन बातों के साथ साथ उन्हें नैतिक शिक्षा भी दी जाय और उनकी शारीरिक दशा सुधार दी जाय तो विद्यालय की शिक्षा का उनपर बहुत ही उत्तम प्रभाव पड़ सकता है।

इस प्रकार विद्यालय भी बालकों के लिए घर के ही तुल्य हो जाता है और घर उनके लिए ऐसा विद्यालय हो जाता है जहाँ उन्हें उत्तम मानसिक और नैतिक शिक्षा मिलती है * और जहाँ आज कल के विद्यालयों की अपेक्षा अधिक उत्तम प्रकार से उन्हें उपयोगी ज्ञान प्राप्त कराए जाते हैं।

घर और विद्यालय को एकरूप बनाने के लिए शिक्षा-विभाग के अधिकारी सब से अच्छा उपाय यह कर सकते हैं कि वे अभिभावकों आदि के लिए ऐसी कक्षाएं खोल दें जहाँ उन्हें बालकों को घर पर शिक्षा देने का काम सिखलाया जाय।

परवर्त्ती शिक्षा। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त भी बालकों के प्रति माता-पिता का वही कर्त्तव्य रहता है जो उससे पूर्व था। भेद केवल इतना ही है कि दूसरी अवस्था में आदर्श अधिक निश्चित और प्रशस्त हो जाता है।

योग्यता और अवस्था के अनुसार बालकों को अच्छे अच्छे निबंध, काव्य, इतिहास, नाटक, दर्शन तथा अन्य उत्तम उत्तम ग्रंथ पढ़ने के लिए उत्साहित करना चाहिए। उन्हें प्राकृतिक सौंदर्य्य का उपासक और शिल्प-कला का प्रेमी बनाना चाहिए। उन्हें इस बात की शिक्षा मिलनी चाहिए कि वे केवल परम आवश्यक कार्य्य करें और अनावश्यक बातों की ओर बिलकुल ध्यान न दें। उन्हें अपने भविष्य, पेशे, कारबार, परोपकार तथा कर्त्तव्य आदि पर भी विचार करते रहना चाहिए। सयाने बालकों को इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि वे आगे चलकर गृहस्थ होंगे और उनपर गृहस्थी का भारी उत्तरदायित्व आ पड़ेगा।

यदि विद्यालय का प्रबन्ध ठीक हो और उसके अधिकारी अपना कर्त्तव्य भली भाँति पालन करते हों तो वहाँ भी आपके इन विचारों और कार्य्यों का समर्थन होगा; और यदि बालक छात्रावास में हो तो आपका कर्त्तव्य वहीं के द्वारा पालन होता रहेगा।

उम्मेदवारी। बालक की शिक्षा की समाप्ति पर आपको उसके भविष्य की चिंता आ घेरेगी, और यह चिंता उपेक्षा करने योग्य नहीं है।

---

*जो लोग यह जानना चाहते हों कि विद्यालय में बालकों के आचरण किस प्रकार सुधारे जा सकते हैं, उन्हें Moral Education League, 6 York Buildings, Adelphis, London से पत्र व्यवहार करना चाहिए।

जीविका ऐसी पसंद करनी चाहिए

(१) जिसमें ईमानदार होने की उत्तेजना मिले,

(२) जो बहुत अधिक शिथिल कर देनेवाली अथवा स्वास्थ्य को हानि पहुँचानेवाली न हो,

(३) जिसमें सारी गृहस्थी के पालन के लिए यथेष्ट आय हो सके,

(४) जिसमें कभी बेकार बैठने की नौबत न आवे और

(५) जो सामाजिक दृष्टि से लाभदायक हो और जिसमें मनुष्य चतुर हो सके।

विद्यालय की भाँति उम्मेदवारी भी बालक के लिए एक प्रकार का नवीन संसार है। इस अवस्था में उसके पहलेवाले साथी नहीं रह जाते, उसपर उतनी अधिक तीव्र दृष्टि नहीं रक्खी जाती और उसपर अनेक कार्य्यों का भार आ पड़ता है। वह अपनी जीविका उपार्जित करना आरंभ कर देता है और स्वतंत्र तथा उत्तरदायित्व-पूर्ण जीवन व्यतीत करने की तैयारी करता है।

जो विद्यालय देश और काल की वर्त्तमान स्थिति पर पूरा पूरा ध्यान रख कर चलाया जाता है, वहाँसे निकले हुए बालकों को आगे चलकर कर्त्तव्य-जगत में किसी प्रकार की कठिनता नहीं होती। पर जिस विद्यालय में इन बातों का ध्यान नहीं रक्खा जाता उसके बालकों को संसार में प्रवेश करने के समय बड़ी भारी क्रांति का सामना करना पड़ता है। जिन स्थानों में विद्यालयों का ऐसा उचित और संतोषजनक प्रबन्ध न हो वहाँ माता-पिता को उचित है कि वे बालकों को साथ ही साथ सांसारिक अनुभव की शिक्षा भी अवश्य दिया करें।

जिस बालक को विद्यालय या घर में इस प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती उसे जीविका के आरंभ में बहुत कठिनाइयाँ होती हैं। जिसे वह स्वतंत्रता समझता है वह उसके लिए बन्धन स्वरूप हो जाता है और इसलिए उसे अपने आचरण और व्यवहार में परिवर्त्तन करना पड़ता है। बात चीत करने में उसकी नम्रता नष्ट हो जाती है, उसके पवित्र विचार दूषित हो जाते हैं, वह भाँग, तंबाकू आदि का शौकीन हो जाता है और उसे अनेक प्रकार के दुर्व्यसन आ घेरते हैं। उसके हृदय में औरों के लिए आदर नहीं रह जाता, वह सुस्त हो जाता है और काम से जी चुराने लगता है। अर्थात् घर की उत्तम शिक्षा के अभाव के कारण उसमें बहुत से ऐब आ जाते हैं।

बालकों के शिक्षा-काल में इस बात पर भी जोर देना चाहिए कि वे खूब स्वस्थ रहें और सादा जीवन व्यतीत करें। उन्हें इस बात की शिक्षा देनी चाहिए कि वे सब कामों को परिश्रम, उत्तमता, शीघ्रता और विचारपूर्वक करें और जहाँ तक हो सके उसे उपयोगी और मनोहर बनाने में कसर न करें और सदा सब कामों में पूरे ईमानदार रहें। इसके अतिरिक्त विद्यालयों, पुस्तकालयों, अजायबघरों और बड़े बड़े बाजारों तथा अन्य स्थानों में घूम घूम कर वहाँ की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करके अनुभवी बनें।

प्रायः ऐसा होता है कि पूरा ज्ञान और अनुभव न होने के कारण ही मनुष्य का आचरण बुरी तरह खराब हो जाता है। पर यदि माता-पिता को बहुत ही साधारण और छोटे छोटे दोषों के भयंकर दुष्परिणामों का परिचय हो और वे अपनी संतानों को भी उनका ज्ञान प्राप्त करा दें तो ऐसी हानियों की संभावना नहीं रह जाती।

युवकों को दूसरों की बातों में न आना चाहिए और न नीच लोगों के फंदे में फँसना चाहिए; बल्कि उन्हें उन लोगों की स्थिति से भली भाँति परिचित होकर दूर रहना चाहिए। उन्हें किसी एक सुयोग्य और उपयुक्त व्यक्ति को अपना मित्र बना लेना चाहिए। उन्हें यह बात समझा देनी चाहिए कि बलवान् और बुद्धिमान् वही मनुष्य है जो अपने आपको वश में रख सकता है और जो अपने जीवन के महत्त्व को समझता है। इंद्रियों या वासनाओं के

वश में होना पशुओं का गुण है। यदि नैतिक विषयों में नहीं तो कम से कम व्यावहारिक विषयों में उसे बड़े बड़े अधिकारियों और व्यापारियों आदि को अपना गुरु समझना चाहिए। उस समय तक उसे यथेष्ट सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक शिक्षा भी मिल जानी चाहिए।

इस प्रकरण में "उम्मेदवारी" से दफ़्तरों में नौकरी के लिए मुँह ताकने का अभिप्राय नहीं है। यहाँ उम्मेदवारी से अभिप्राय किसी प्रकार की जीविका ढूँढ़ना है।

युवावस्था।

बालकों की युवावस्था में माता-पिता के लिए निम्न-लिखित बातों पर ध्यान रखना बहुत उपयोगी होगा।

(१) युवावस्था, विवाह तथा तत्सम्बन्धी अन्य आवश्यक बातों का महत्त्व और उत्तरदायित्व आदि।

(२) सादा और स्वास्थ्यप्रद जीवन व्यतीत करने, नित्य स्नान तथा यथेष्ट व्यायाम करने, मादक या पौष्टिक पदार्थों से दूर रहने, बहुत अधिक नहीं तथापि कठिन परिश्रम करने, अपनी तथा दूसरों की मर्य्यादा का ध्यान रखने, गाढ़ निद्रा में सोने, बहुत मुलायम बिछौने पर अथवा बहुत अधिक न सोने, जगाने पर तुरंत उठ बैठने आदि बातों का अभ्यास।

(३) साधारण सांसारिक तथा नैतिक बातों की शिक्षा।

(क) आरंभ से ही इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालक गृहस्थी की सब बातों को समझता रहे। बालकों के साथ माता-पिता का प्रेम और व्यवहार, नित्य के सुख दुःख, माता का गृह-प्रबन्ध, पिता का धनोपार्जन, विवाहित पुरुषों का उत्तरदायित्व, माता-पिता को आदर्श और स्थायी साथी समझना, विवाह की उपेक्षा न करना तथा घर को राष्ट्र का एक अंग समझना आदि बातें ऐसी हैं जिनका ज्ञान युवकों को करा देना बहुत आवश्यक है।

(ख) युवकों को साधारणतः यह भी बतला देना चाहिए कि युवावस्था में मनुष्य को अपने मन और इंद्रियों को सदा वश में रखना चाहिए, विशेषतः विवाहोपरांत इस बात की बहुत आवश्यकता होती है, स्वस्थ और पूर्ण शारीरिक वृद्धि के लिए इसकी बहुत आवश्यकता है, विवाहोपरांत और बड़े होने पर इससे अनेक लाभ होते हैं, अपनी स्त्री तथा संतान के स्वास्थ्य तथा उनके विचारों को शुद्ध करने का ध्यान रखना चाहिए, दुर्व्यसनों में पड़ने का परिणाम भयङ्कर होता है, बुरे अभ्यासों और साथियों से अपनी तथा अपने बड़ों की हतक होती है, वेश्या-गमन बहुत बुरा है और अनेक पशुओं के आचरण से भी गया बीता है, इससे मनुष्य का चरित्र भ्रष्ट हो जाता है, वासनाओं के वश में होना नीचता का चिह्न है, इससे हमारा सारा नैतिक-आचरण मट्टी में मिल जाता है, आदि आदि।

(४) माता-पिता को अपने बालकों के साथ अपने परम मित्रों की भांति व्यवहार करना चाहिए और बालकों को भी सदा सब बातों में अपने माता-पिता से सम्मति ले लेनी चाहिए।

ज्ञान।

सात वर्ष की अवस्था तक बालकों को बहुत ही कम ज्ञान रहता है और वे तत्संबंधी बहुत ही थोड़ी बातें सीख सकते हैं। तीसरी अवस्था में उसमें बहुत कुछ उन्नति और वृद्धि हो सकती है। इक्कीस वर्ष की अवस्था तक अनेक कवियों, चित्रकारों और दार्शनिकों ने बहुत बड़े बड़े काम किए हैं।

जहाँ तक संभव हो, युवकों को उचित है कि वे प्रकृति, विज्ञान और संसार संबन्धी सभी आवश्यक बातें जान लें। उनकी विवेक-शक्ति को कभी कुंठित न करना चाहिए। बहुत ही साधारण और नित्य के व्यवहार की चीजों के संबंध में भी उन्हें बुद्धि-मत्ता-पूर्वक प्रश्न करते रहना चाहिए। राजनीति, शिल्प, कला, साहित्य, विज्ञान, गार्हस्थ्य जीवन आदि सभी विषयों की केवल उन्हीं बातों को सत्य और

युक्त मानना चाहिए जो परीक्षित हों। माता-पिता को इस बात का उद्योग करना चाहिए कि उनका मन सदा स्वतन्त्र, विवेकपूर्ण और कार्य्य-तत्पर रहे। दूसरी अवस्था में बालकों से प्रश्नोत्तर करके ही इस अभीष्ट की बहुत कुछ सिद्धि की जा सकती है।

तीसरी अवस्था के मध्य में ही उन्हें बहुत सी बातों का ज्ञान हो सकता है और वे अनेक बातों का स्मरण रख सकते हैं। प्राचीन साहित्य, काव्य, कला, विज्ञान और दर्शन आदि के अध्ययन से मनुष्य की विचार और स्मरण-शक्ति बहुत कुछ बढ़ सकती है। वैज्ञानिक प्रणाली की शिक्षा से उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र, पुष्ट और उपयोगी बनाई जा सकती है। प्रत्येक बात पर शीघ्रता और ध्यानपूर्वक पूरा पूरा विचार करने और सब बातों को स्मरण रखने, उनके संबंध में ज्ञान प्राप्त करने, उनको क्रम या श्रेणीबद्ध करने, और उसका अभिप्राय निकालने तथा उपयोग करने से मनुष्य की विचार-शक्ति बढ़ती है।

—:o:—

इक्कीस वर्ष से ऊपर की अवस्था।

स्वावलंबन।

इक्कीस वर्ष की अवस्था में मनुष्य को यथेष्ट ज्ञान हो जाता है और वह दूसरों पर अनुचित रीति से निर्भर न रह कर स्वयं अपनी समझ से काम करने के योग्य हो जाता है। तथापि यह समझना ठीक नहीं है कि अब उसको अभ्यास, आज्ञाकारिता या आदर आदि की आवश्यकता नहीं है अथवा वयस्क होते ही उसे और कोई नई बात सीखने की आवश्यकता नहीं रह जाती। ज्ञान की भाँति ठीक तरह से जीवन व्यतीत करने में भी उन्नति के लिए कोई एक विशिष्ट समय निर्द्धारित नहीं किया जा सकता।

इसलिए उस समय भी उन्हें नए उत्तम अभ्यासों की आवश्यकता रहती है और उनका क्रम बराबर चलता रहना चाहिए। साधारण आज्ञाकारिता उस समय तक युक्ति और विवेक के अधीन हो जाती है और उसकी आवश्यकता भी बराबर पड़ती है। उस समय तक भी यह बात बहुत आवश्यक है कि जीवन सादा, सत्यतापूर्ण, परोपकारी, प्रसन्न, व्यवस्थित और उपयोगी हो और ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती जाय त्यों त्यों उत्तम जीवन का महत्त्व और उपयोग भी बढ़ता जाय। अब तक सीखी हुई बातों के उपयोग का यही समय आता है। उस समय मनुष्य को सच्चे और सुयोग्य नागरिक की भाँति अपनी गृहस्थी, समाज, पेशे और मित्रों की यथेष्ट सेवा करनी चाहिए, औद्योगिक, राजनीतिक और क़ानून की व्यवस्था की उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिए और विद्या, नीति, स्वास्थ्य, विज्ञान, कला और अंतर्राष्ट्रीय शांति और एकता की उन्नति करनी चाहिए।

यदि इन बातों का ठीक ठीक ध्यान रक्खा जायगा तो किसी प्रकार की नैतिक त्रुटि की बहुत ही कम संभावना रह जायगी।

ज्ञान-वृद्धि और अध्ययन।

इक्कीस वर्ष की अवस्था से ही मनुष्य का वास्तविक जीवन आरंभ होता है और इस अवस्था में युवकों को बहुत कुछ सीखने की आवश्यकता होती है। यदि इसमें किसी प्रकार की त्रुटि होगी तो शिक्षा दूषित और अपूर्ण रह जायगी। इसलिए जिन युवकों ने अपनी शिक्षा का शुभ उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखने में कभी क़सर न करनी चाहिए।

(क) उन्हें सब बातों को देखना और सुनना चाहिए। नम्र और सरल रह कर वे प्रत्येक स्थिति और प्रत्येक मनुष्य से बहुत कुछ सीख सकते हैं। उन्नति की इच्छा रख कर वे सर्वोत्तम आचरणों को अपना आदर्श बना सकते हैं, स्वयं सफल होने का दृढ़ विश्वास रख कर दूसरों की अकृतकार्य्यता से वे सचेष्ट हो सकते हैं और अपने उत्तरदायित्व को समझ कर वे अपने विवेक का बहुत ही उचित

उपयोग कर सकते हैं। जीवन में अनेक ऐसे गड्ढे होते हैं जिनमें अज्ञान और अननुभवी लोग प्रायः बहुत बुरी तरह गिर जाते हैं। इसलिए युवकों को उचित है कि वे सब बातों में अपने माता-पिता से भी सम्मति ले लिया करें।

(ख) हमारे जीवन की अपेक्षा विचार और ज्ञान का संसार बहुत बड़ा है। हमसे पहले संसार में असंख्य पीढ़ियाँ हो चुकी हैं और भविष्य में भी होंगी। इस विशाल संसार में प्रवेश करने के लिए हमें अध्ययन से सहायता लेनी चाहिए। अध्ययन की गणना मनुष्य के सबसे बड़े और सर्वोत्तम आनंदों में है। युवकों को अपने धर्म्म के प्रधान प्रधान ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य धर्म्मों के बड़े बड़े ग्रंथ भी अवश्य पढ़ने चाहिएं। बाइबिल, कुरान, बौद्ध सूत्र, उपनिषद्, पुराण आदि सभी पाठ्य हैं। हाँ, अपने धर्म्म की पुस्तकों को अधिक रुचि और श्रद्धा के साथ पढ़ना चाहिए। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न देशों की नीति, काव्य, इतिहास, राज्यप्रबंध, समाज, स्त्री-शिक्षा, शिल्प, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि सभी विषयों की उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करना परम आवश्यक और उपयोगी है। ऐसी पुस्तकों की छोटी या बड़ी तालिका अपनी अपनी रुचि के अनुसार अथवा किसी सुयोग्य विद्वान् की सहायता से बनाई जा सकती है। किसी सुयोग्य मनुष्य के लिए बड़े बड़े प्राचीन विद्वानों के गूढ़ विचारों से परिचित होने से बढ़ कर और कोई बात अधिक समाधानकारक नहीं हो सकती।

(ग) प्राचीन काल के बड़े बड़े महात्माओं के विचारों का ज्ञान प्राप्त करके हमें उनसे लाभ उठाना चाहिए। यदि इन उत्तमोत्तम विचारों का हमारे आचरण पर कुछ भी प्रभाव न पड़े तो समझना चाहिए कि ऊँचे आदर्शों में मानुषी प्रकृति बहुत पिछड़ी हुई है। इस प्रकार परिणाम निकालने से बढ़कर और कौन सी बात अधिक शोकजनक हो सकती है?

लेकिन सब दशाओं में केवल पुस्तकें पढ़कर ही उनपर निर्भर रहना भी भारी भूल है। गान-विद्या या चित्रकारी सीखने में केवल पुस्तकों की सहायता से ही कभी सफलता नहीं हो सकती। इन बातों को जानने के लिए किसी सुयोग्य गुरु से नियमित शिक्षा पाने और स्वयं परिश्रमपूर्वक अभ्यास करने की आवश्यकता होती है। केवल पुस्तकें पढ़ने, किसी उदाहरण को देखते रहने अथवा कभी कभी अभ्यास करने से कभी अभीष्ट-सिद्धि नहीं हो सकती।

ठीक यही दशा आचरण की भी है। केवल बड़े बड़े महात्माओं की जीवनियाँ आदि पढ़ने से ही हमारा आचरण पवित्र नहीं हो सकता। उसके लिए हमें स्वयं तद्वत् आचरण करने की आवश्यकता होती है। पर न जाने क्यों मानव जाति ने यह विषय अभी तक यथेष्ट रूप से नहीं जाना है। किसी वैज्ञानिक शिक्षक को अनेक प्रकार की प्रक्रियाएँ और परीक्षाएँ करते देख कर शिष्यों को उन्हें जानकर भी कार्य्यरूप में परिणत करने में बहुत कठिनता होती है। इसी प्रकार उच्च जीवन को भी समझ लीजिए। मारकस आरेलियस कहता है—"मनुष्य को दूसरों की सहायता से नहीं बल्कि अपने बल पर खड़ा होना चाहिए।" महात्मा बुद्ध का उपदेश है—"शुद्ध हृदय और सत्यता से अपना जीवन व्यतीत करो।" क्या इन उपदेशों के अनुसार कार्य्य करने में, वैज्ञानिक प्रक्रिया या कला सीखने की अपेक्षा कम प्राकृतिक कठिनाइयाँ हैं?

तात्पर्य्य यह कि उत्तम आचरण को भी बहुत ही कष्टसाध्य कला समझना चाहिए। इसलिए उच्चतर जीवन पर हमको बहुत अधिक ध्यान रखना चाहिए और अपने आदर्श के समान बनने के लिए हमें उद्योग करना चाहिए। किसी शिल्प या कला की भाँति अपने आचरण सुधारने के लिए हम जितना ही अधिक परिश्रम करेंगे उतनी ही अधिक हम सफलता भी प्राप्त करेंगे और जितना ही हम लोग उसकी ओर से उदासीन रहेंगे उतनी ही हमें अकृतकार्य्यता भी होगी।

नए जीवन में प्रवेश करनेवाले युवकों से हम यही कहेंगे—"जीवन एक ललित कला है; यदि अन्य उत्तम कलाओं की भांति उसके लिए भी तुम उतना ही परिश्रम करोगे तो तुम्हें अवश्य सफलता होगी।" अपनी इच्छा-शक्ति को अपने मनोदेवता के आज्ञानुसार कार्य्य करने के योग्य बनाओ। जब तक तुम पवित्र हृदय, सच्चे पराक्रमी, उदार विचारशील और दूसरों से सहानुभूति करनेवाले न बन जाओ तब तक बराबर उद्योग करते चलो। ऐसी दशा में तुम सज्जनता में भी उतने ही पारंगत हो जाओगे जितने कि चित्र या गान-विद्या अथवा किसी अन्य कला में।

जो युवक अपने नैतिक आचरण को आदर्श बनाना चाहते हों उन्हें इस प्रकार के उद्योग में कभी त्रुटि न करनी चाहिए। जितना परिश्रम शिल्पकार या कलाकुशल होने में करना पड़ता है उतना ही आदर्श-चरित होने में भी। आदर्श जीवन बिताने के लिए वास्तविक कार्य्य करने की आवश्यकता है, कोरे लंबे चौड़े विचारों की नहीं।

नैतिक शिक्षा में विचार, अनुभव, अध्ययन और उत्तम कर्म्म करने की आवश्यकता होती है; और इन्हीं बातों की आवश्यकता समान रूप से ज्ञान-संबंधी शिक्षा के लिए भी होती है।

परिशिष्ट।

शिक्षा-संबंधी कार्य्यों में हमारे लिए दो मार्ग हैं। या तो हम केवल विचार करनेवाले बन जायँ और या केवल जबानी बातें करने में वीर हो जायँ। हमें विश्वास है कि हमारे पाठक वाक्-वीर होने की अपेक्षा विचारवान् होना अधिक पसंद करेंगे। वाक्-वीर बातें तो बहुत सी कर जायँगे पर उनके किए काम कुछ भी न होगा। किसी मनुष्य के लिए केवल ओषधियों के आधार पर जीवित रहना असंभव है। पर इसके विरुद्ध जो मनुष्य स्वयं उत्तम आदर्श उपस्थित करता है वही भली भाँति अपना पक्ष भी समर्थन कर सकता है। वह दूसरों के समान उच्च आदर्श उपस्थित करता है, लोगों को यह सिखलाता है कि बहुत से लोग ऐसे हैं जो भली भाँति उन उच्च आदर्शों का अनुकरण कर सकते हैं और तीसरे यह कि जो मनुष्य उसके लिए निरंतर कठिन परिश्रम करता है उसे बहुत अच्छा आध्यात्मिक फल भी अवश्य मिलता है। इसके अतिरिक्त जिन लोगों की परिस्थिति ठीक नहीं होती वे भी उससे कुछ न कुछ सीख कर लाभ उठा सकते हैं।

दुर्भाग्यवश गृहस्थी में एक ही जीव को स्त्री, पत्नी, माता, दासी, दाई और शिक्षिका बनना पड़ता है, गृहस्थी का सब काम करना पड़ता है और दोनों समय भोजन आदि पकाना और बाल बच्चों को देखना रहता है। प्रायः ऐसी दशा में उनके लिए उत्तम शिक्षा असंभव हो जाती है। इसलिए शिक्षा-प्रचार के साथ ही साथ जन-साधारण की दरिद्रता और सामाजिक कुरीतियाँ दूर करना भी हमारा कर्तव्य हो जाता है। यदि आदर्श की सीमा घटाकर समाज की स्थिति के अनुकूल कर दी जाय तो भी काम नहीं चल सकता। इस क्रिया से समाज की उन्नति के बदले अवनति होने लगेगी। अतः जो मनुष्य शिक्षा प्रचार का काम करना चाहता हो उसे सामाजिक दोष और दरिद्रता दूर करने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

किसी बड़ी से बड़ी पुस्तक में भी जीवन या शिक्षा-संबंधी सभी छोटी बड़ी बातों का कदापि पूरा पूरा समावेश नहीं हो सकता। इसलिए जब तक माता-पिता स्वयं समझ बूझ कर और सहानुभूति सहित बालकों को इस पुस्तक में प्रकट किए हुए विचार भली भाँति न बतलावें तब तक इसका भी कोई फल नहीं हो सकता। लेखक आशा करता है कि इस लेख में उसने जो आकारहीन बीज बोए हैं उनसे अभिभावकों के सहानुभूतिपूर्ण हृदय में बड़े बड़े वृक्ष उत्पन्न होंगे जिनमें सुन्दर फूल और सुस्वादु फल लगेंगे। एवमस्तु।

—:०:—

जम्बू-राजवंश ।

(गतांक से आगे ।)

अँगरेजों की ओर से फ्रेडरिक करी साहब तथा मेजर हेनरी मांटगोमरी लारेंस ने महाराज गुलाबसिंह के साथ जो संधि की थी वह इस प्रकार थी:—

(१) ९ मार्च १८४६ वाली लाहौर की संधि की चौथी धारा के अनुसार लाहौर राज्य से अँगरेजों को मिली हुई अमलदारी के अंतर्गत लाहौर प्रांत को छोड़ कर, सिंधु नदी के पूरब और रावी नदी के पश्चिम का कुल पहाड़ी प्रांत और उसके अधीनस्थ देश चंबा सहित अँगरेज सरकार सदा के लिए महाराज गुलाबसिंह और उनके पुरुष उत्तराधिकारियों को दे देती है ।

(२) पहली धारा के अनुसार गुलाबसिंह को दिए हुए प्रांत की पूर्वी सीमा अँगरेज सरकार और महाराज गुलाबसिंह के नियुक्त किए हुए कमिश्नरों द्वारा निर्द्धारित होगी और उसका निश्चय और निर्द्धारण बंदोबस्त के बाद किया जायगा ।

(३) उक्त धाराओं के अनुसार महाराज गुलाबसिंह और उनके पुरुष उत्तराधिकारियों को जो कुछ दिया गया है उसके बदले में अँगरेज सरकार को महाराज गुलाबसिंह ७५ लाख नानकशाही रुपये देंगे; जिनमें से ५० लाख रुपये तो इस संधि के होते ही और शेष २५ लाख रुपये आगामी १ अक्तूबर सन् १८४६ तक वे दे देंगे ।

(४) महाराज गुलाबसिंह की अमलदारी की सीमा में कभी कोई परिवर्त्तन बिना अँगरेज सरकार की सहमति के न होगा ।

(५) यदि लाहौर सरकार या किसी दूसरे पड़ोसी राज्य के साथ महाराज गुलाबसिंह का किसी प्रकार का झगड़ा खड़ा होगा तो वे उसका निर्णय अँगरेज सरकार से करावेंगे और अँगरेज सरकार का किया हुआ निर्णय ही स्वीकार करेंगे ।

(६) यदि महाराज गुलाबसिंह की सीमा के अंदर या आस पास अँगरेजी सेना कभी लड़ने जायगी तो महाराज और उनके उत्तराधिकारी अपनी पूरी सैनिक शक्ति सहित उसमें सम्मिलित होंगे ।

(७) महाराज गुलाबसिंह बिना अँगरेजी सरकार की स्वीकृति के कभी किसी अँगरेजी प्रजा या किसी यूरोपियन या अमेरिकन राज्य की प्रजा को अपने यहाँ नौकर न रक्खेंगे ।

(८) ११ मार्च सन् १८४६ को अँगरेज सरकार और लाहौर दरबार में जो अलग संधि हुई है उसकी ५ वीं, ६ ठी और ७ वीं धाराओं की बातों को अपनी पाई हुई अमलदारी के संबंध में महाराज गुलाबसिंह सदा पालन करेंगे ।

(९) बाहरी शत्रुओं से उनकी अमलदारी की रक्षा करने में अँगरेज सरकार सदा महाराज गुलाबसिंह को सहायता देगी ।

(१०) अँगरेजी सरकार की अधीनता महाराज गुलाबसिंह स्वीकार करते हैं और स्वीकृति के बदले में वह अँगरेजी सरकार को प्रतिवर्ष एक घोड़ा, बढ़िया पसंद की हुई जाति के पूरे शालवाले बारह बकरे और शाल की तीन जोड़ियाँ देंगे ।

दस धाराओंवाली यह संधि आज राइट आनरेबुल सर हेनरी हार्डिंज जी० सी० बी० गवर्नर जनरल के आज्ञानुसार फ्रेडरिक करी महाशय तथा ब्रेवेट मेजर हेनरी मांटगोमरी लारेंस और स्वयं महाराज गुलाबसिंह में हुई है; और आज राइट आनरेबुल सर हेनरी हार्डिंज जी० सी० बी० गवर्नर जनरल की मोहर होकर सकारी गई है ।

अमृतसर में १६ मार्च १८४६ मुताबिक १७ रबी-उल—अव्वल १२६२ हिजरी को लिखी गई ।

(ह०) एच० हार्डिंज (मोहर) एफ० करी । एच० एम० लारेंस ।

उसी अवसर पर बड़े लाट ने अपने बाल-बच्चों को सैर करने के लिए काश्मीर भेजा और महाराज गुलाबसिंह से सब प्रकार उनका पूरा पूरा ध्यान रखने के लिए कहा । गुलाबसिंह उन लोगों को साथ

लेकर उसी दिन जसरौटा के लिए रवाना हुए। वहाँ पहुँच कर उन्होंने दीवान हरीचंद को सिक्ख तथा दूसरी सेनाओं के साथ हजारा जिला विजय करने के लिए भेजा। इसके बाद ही काश्मीर में भी कुछ आंतरिक उपद्रव उठे जिनकी शांति अँगरेजी सेना की सहायता से की गई। हजारा प्रांत के जमींदार बड़े उद्दंड थे इसलिए महाराज गुलाबसिंह वह जिला देकर मनावर और धारी प्रांत जो कि पंजाब सरकार की ओर से मेजर अबोट की अधीनता में थे, लेना चहते थे। ५ मई सन् १८४७ को एक सनद के द्वारा वे दोनों जिले महाराज गुलाबसिंह को मिल गए और उन्होंने हजारा जिला पंजाब सरकार को दे दिया।

सन् १८४८ के आरंभ में एमरटन और एंडरसन नामक दो अँगरेज मुलतान गए थे; वहाँ उन्हें मूलराज के सैनिकों ने मार डाला। अतः मुलतान विजय करने के लिए कुछ खालसा सेना के साथ सरदार शेरसिंह अटारीवाले और मेजर एडवर्ड भेजे गए जिन्होंने जाकर सूरजकुंड में छावनी डाली। हजारा जिले के तत्कालीन अधिकारी सरदार छतरसिंह अटारीवाले ने अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मदखाँ से मित्रता कर ली थी और उन दोनों ने मिलकर पंजाब विजय करने का विचार किया था। अतः उनपर आक्रमण करने के लिए लार्ड गफ की अधीनता में अँगरेजी सेना भेजी गई जिसने सिक्खों के बहुत वीरतापूर्वक लड़ने पर भी रामनगर और चिलियानवाला में उन्हें परास्त किया। प्रायः उसी समय मुलतान भी जीत लिया गया था और महाराज गुलाबसिंह की कुमक पाकर अँगरेजों ने गुजरात में सिक्खों को मार भगाया था। इसके उपरांत खालसा सेना ने भी रावलपिंडी में अधीनता स्वीकार कर ली और पंजाब में शांति स्थापित हो गई।

सिक्खों के राजत्वकाल में मुलतान का शासन और प्रबंध दीवान सावनमल के हाथ में था। जब दीवान सावनमल एक हत्यारे के हाथ से निहत हो गए तो उनके चिरंजीव दीवान मूलराज उनके उत्तराधिकारी हुए। एक बार दीवान मूलराज नियमित राजस्व न दे सके और लाहौर दरबार में इसकी सूचना सर जान लारेंस को दी। खालसा शक्ति का अंत हो जाने पर सर लारेंस लाहौर के रेसिडेंट नियुक्त हुए थे अतः उन्होंने दीवान मूलराज को लाहौर बुलवा भेजा और उनपर बहाने से उनके प्रांत में उपद्रव होने का अभियोग लगाया; इसके सिवा उन्होंने यह भी कहा कि तुम्हारे और भाई तुम्हारा पद लेने के प्रयत्न में लगे हैं। सर लारेंस ने यह भी कहा कि यदि अँगरेज सरकार के अधिकारी मुलतान जाकर इन झगड़ों को तै कर दें तो बहुत ही अच्छा होगा और इसके उपरांत बाकी राजस्व दे देने पर सब प्रकार के उत्तरदायित्व से आपकी मुक्ति हो जायगी। पर पीछे कुछ सोच समझ कर सर लारेंस ने इस मामले को मुलतवी कर दिया और मूलराज लौटकर मुलतान चले गए। सर लारेंस के बाद जब सर फ्रेडरिक करी लाहौर के रेसिडेंट के पद पर नियुक्त हुए तो उन्होंने सरदार कान्हसिंह मान के साथ, जो मुलतान के सूबेदार मूलराज पर विजय प्राप्त करने के लिए नियुक्त हुए थे, मि० एमरटन और मि० एंडरसन को भी भेज दिया। जब इन अधिकारियों ने मूलराज से भेंट करके उनसे किले की कुंजियां और प्रान्त का अधिकार माँगा तो उन्होंने सबको साफ और कड़ा जवाब दिया। वहाँ से लौट कर जब वे ईदगाह में अपने डेरे पर आए तो वहीं कुछ दुष्टों ने मि० एमरटन के कलेजे में बरछा भोंक कर और मि० एण्डर्सन की तलवार से हत्या कर दी। इस पर बड़ा उपद्रव मचा और युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। निहत अफसरों के साथी सिक्ख सिपाही मूलराज की सेना में मिल गए और सरदार कान्हसिंह उनके बंदी हो गए। जब सर फ्रेडरिक करी को यह बातें मालूम हुईं तो उन्होंने सरदार शेरसिंह की अधीनता में कुछ सिक्ख सेना मुलतान की ओर भेजी। बहावलपुर के नवाब तथा मेजर सर हरबर्ट एडवर्ड्स की सेना भी बन्नू से आकर उसमें

मिल गई। जब इतनी सेनाएँ मिलकर भी मुलतान के किले पर अधिकार न कर सकीं तो अन्त में बंबई से अँगरेजी सेना मँगानी पड़ी; तब कहीं जाकर मुलतान के किले पर अधिकार हुआ। उस अवसर पर सरदार छतरसिंह अटारीवाले ने भी, जो लाहौर सरकार की ओर से हजारा प्रांत का प्रबन्ध करने के लिए भेजे गए थे, विप्लव करने का विचार किया। इस विचार का कारण यह कहा जाता है कि उनकी अधीनस्थ सेना ने खालसा सरकार के एक अँगरेज अफसर को मार डाला था और इसलिए सरदार छतरसिंह को स्वयं अपने कुशल क्षेम में संदेह था। सर फ्रेडरिक करी ने राजा दीनानाथ को उन्हें समझाने के लिए भी भेजा। पर उसका कुछ फल न हुआ। सरदार छतरसिंह ने कई पत्र भेज कर अपने पुत्र शेरसिंह को मूलराज की सेना में सम्मिलित होने की आज्ञा दी जिसका पालन भी हुआ। छतरसिंह स्वयं विप्लव की तैयारियां करने लगे। उस समय सिक्खों को यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि वे सरकारी अमलदारी को उठा देंगे और इसी लिए चारों ओर से बहुत से सिक्ख आकर उनसे मिल गए और गाँव देहातों में लूट पाट करने लगे। शाहदरे के निकट रावी पर का राजघाटवाला पुल भी उन्होंने जला दिया। मृत हरीसिंह के पुत्र अर्जुनसिंह के अधीन गुजरानवाले तक का प्रांत था। उधर दूसरी ओर नूरपुर में रामसिंह विद्रोह के प्रयत्न कर रहा था। पेशावर पहुँचकर छतरसिंह ने खालसा सेना को रावलपिंडी भेजा। उसी अवसर पर मि॰ लारेंस और मि॰ बाइड जिन्हें तारीखे-सुलतानी के रचयिता सरदार सुलतान मुहम्मदखाँ बारकजाई ने गिरिफ्तार किया था, उनके पास भेजे गए। अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मदखाँ भी छतरसिंह की सहायता के लिए आ गए और काश्मीर, हजारा, रावलपिंडी और झेलम तक का प्रांत जीतने का विचार करने लगे। अटक का किला जिसे छतरसिंह ने अमीर की सहायता से ही लिया था, फिर उनके हवाले कर दिया गया।

पहले छतरसिंह और गुलाबसिंह में भी बड़ी मित्रता थी, इसलिए छतरसिंह ने अपना दूत श्रीनगर भेजकर गुलाबसिंह से इस युद्ध में सम्मिलित होने के लिए कहा और स्वयं उन्हीं को पंजाब का शासक बनाने का भी लालच दिलाया। पर महाराज गुलाबसिंह ने उनकी बात स्वीकार नहीं की और उलटे उन्हीं को अँगरेजों से क्षमा-प्रार्थना करने की सम्मति दी। उन्होंने छतरसिंह को यह भी स्मरण दिलाया कि महाराज रणजीतसिंह प्रायः कहा करते थे कि जो अँगरेजों का विरोध करता है वह स्वयं अपनाही नाश करता है। छतरसिंह का दूत बख्शी हीरानन्द श्रीनगर में नजरबन्द कर लिया गया और अमीर दोस्त मुहम्मद-खाँ का जो दूत पत्र और नजर के लिए घोड़े और फारस की तलवारें लेकर गुलाबसिंह से सहायता माँगने आया था, वह श्रीनगर के बाहर से ही खाली लौटा दिया गया। गुलाबसिंह ने पहले ही हजारा प्रांत का विद्रोह शांत करने के लिए अँगरेजी सेना के साथ वहाँ स्वयं जाने की इच्छा प्रकट की थी। सर फ्रेडरिक ने पहले तो उनके पत्र का उत्तर ही न दिया और पीछे उन्हें केवल यही आज्ञा दी कि बलवाइयों को पहाड़ी जिलों में घुसने से रोको। इस पर उन्होंने दीवान हरीचन्द को जम्बू से मनावर भेज दिया और सैय्यद गुलामअली शाह और जोरावरसिंह की अधीनता में कुछ सेना रामसिंह के मुकाबिले के लिए भेज दी गई। जालन्धर के तत्कालीन कमिश्नर सर जान लारेंस की आज्ञा और सम्मति से इस सेना ने बहुत अच्छा काम किया। उधर मेजर हेरिसन की अधीनता में नूर मुहम्मद की सेना ने भी बड़ी सहायता दी। महाराज गुलाबसिंह ने आज्ञा दे दी थी कि जम्बू से यदि कोई जाकर विद्रोहियों में सम्मलित होगा तो उसके संबन्धी कैद कर लिए जायँगे और उनकी जायदाद जब्त हो जायगी। उस अवसर पर अँगरेजी सेना जेनरल निकलसन की अधीनता में रामनगर में पड़ी हुई थी और सिक्ख सेना ने चनाब

नदी पार करके वजीराबाद के निकट डेरा डाला हुआ था। सिक्खों की कुछ पलटनें जो उस समय जम्बू में थीं, वजीराबाद जाकर अपनी सेना में सम्मिलित होना चाहती थीं। पर जम्बू सरकार ने पहले ही धोखे में उनके हथियार रखवा लिए थे। जब वह पलटनें बलपूर्वक अपने हथियार ले लेने पर उतारू हुईं तो व्रजराज की पलटन द्वारा उनका दमन कराया गया। उसी अवसर पर बहुत वीरता-पूर्वक कार्य्य करने के कारण धर्म्मसिंह कर्नेल बना दिया गया था।

जिस समय महाराज गुलाबसिंह श्रीनगर में थे उस समय रणवीरसिंह ने जम्बू प्रांत का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। पर बाकी सारे पंजाब में बहुत उपद्रव मचा हुआ था। अमीर दोस्त मुहम्मद-ख़ाँ सिक्ख सेना में मिल गए थे; उधर मेजर एबट ने हजारा प्रांत छोड़कर मारकोट नामक गाँव में शरण ली थी। गुलाबसिंह ने उस अवसर पर कुछ विश्वसनीय व्यापारियों के हाथ चमड़े के थैलों में भर कर बहुत सी रकम और गोली बारूद मेजर साहब के पास भेजी थी। काजी नादिरअलीख़ाँ भी उनकी सेवा और सहायता के लिए उनके पास भेज दिए गए थे। इसी प्रकार महाराज ने अपने एक प्रधान को लाहौर में सर फ्रेडरिक करी के पास भी भेज दिया था।

जिस समय अँगरेजी सेना मुलतान को घेर रही थी, पिता छतरसिंह की आज्ञा पाकर सरदार शेरसिंह अँगरेजी सेना से बचने के लिए मुलतान से चल पड़े और विद्रोहियों के साथ मिलकर उन्होंने रामनगर में जनरल निकलसन का मुकाबला किया। जनरल की सेना चनाब नदी पार करके सवेरे ही उनके सिर पर पहुँच गई थी। उस युद्ध में शेरसिंह की सेना बहुत वीरतापूर्वक लड़ने पर भी हार गई। दूसरी लड़ाई चिलियानवाला में हुई जिसमें कमांडर-इन-चीफ लार्ड गफ भी उपस्थित थे। यद्यपि उस अवसर पर अँगरेजी तोपखाने ने खूब गोले बरसाए; पर सिक्खों ने बिना उनकी परवा किए दिन भर लड़ाई जारी रक्खी। संध्या समय अँगरेजी सेना तो युद्ध स्थल में ही रह गई और खालसा सेना वहाँ से दो कोस चलकर रसूल नामक मौजे में पहुँची; पर वहाँ उसे रसद आदि मिलने में बहुत कठिनता हुई। गुजरात में उसे रसद बहुत मिलती थी इसलिए वह वहाँ से चल कर गुजरात पहुँची। अँगरेजी सेना उस समय सिक्खों पर अंतिम धावा करना चाहती थी इसलिए कर्नेल लारेंस ने जम्बू और काशमीर के सब रास्तों पर पहरे का प्रबंध कर दिया, उक्त प्रांतों में प्रवेश करने-वाले सिक्खों के हथियार रखाए जाने लगे और मनावर, मिंबर, मीरपुर तथा अन्य पहाड़ी नगरों में सेना की टुकड़ियों की छावनी पड़ गई। महाराज गुलाबसिंह का ताहिरखाँ नामक एक वकील सदा मेजर मैकिंसन के पास रहता था और अँगरेज अफसरों की आज्ञाएं दीवान हरिचंद के पास भेज देता था। दीवान साहब उस समय थोड़ी सी सेना सहित मीरपुर में ठहरे हुए थे और वहीं से सारी अँग-रेजी सेनाओं को रसद भेजते थे। अंत में गुजरात का प्रसिद्ध घोर युद्ध हुआ। अँगरेजी तोपखाने ने पहले गोले बरसाने आरंभ किए। उधर सरदार छतरसिंह ने अँगरेजी सेना के एक पक्ष पर और शेरसिंह ने दूसरे पक्ष पर आक्रमण किया। उसी स्थल पर रामसिंह छापेवाले ने वीरतापूर्वक लड़कर अपने प्राण त्यागे थे। जब अंत में सिक्ख परास्त हो गए तो उन्होंने भिन्न भिन्न स्थानों में जाकर गुलाबसिंह के कर्म-चारियों के पास शरण ली; वहाँ उनके हथियार रखवा लिये गए थे और घोड़े हाथी आदि छीन लिये गए थे। कुछ सिक्ख सांगला के पास पकड़े गए थे और वहीं उनसे अँगरेजों ने हथियार रखवा लिये थे। इस प्रकार धीरे धीरे छतरसिंह और शेरसिंह के अधीनस्थ सारे सिक्खों ने हथियार रख दिए और सारे पंजाब में शांति हो गई। अंत में कर्नेल सर हेनरी लारेंस की सम्मति से मि० (सर हेनरी) ईलियट (सरकारी परराष्ट्र-विभाग के प्रधान मंत्री) ने लाहौर के किले में एक बड़ा दरबार किया। महाराज दलीपसिंह अपने सरदारों सहित उसी

किले में रहते थे। पंजाब प्रांत के अँगरेजी अमलदारी में मिला लिये जाने की घोषणा की गई और दलीपसिंह गद्दी से उतार दिए गए। कुछ दिनों बाद बड़े लाट लार्ड डैलहौजी लाहौर गए और वहाँ से उन्होंने दलीपसिंह को कराची भेज दिया। उस अवसर पर गुलाबसिंह जम्बू में ही थे और उनसे बड़े लाट से भेंट नहीं हुई थी। पीछे जब लार्ड नेपियर कमांडर-इन-चीफ होकर आए तो सर जान लारेंस जम्बू से गुलाबसिंह को स्यालकोट ले गए और वहाँ कमांडर-इन-चीफ से उनकी भेंट हुई।

सन् १८५० में महाराज गुलाबसिंह रामपुर होते हुए काश्मीर गए और एक दूसरे मार्ग से लेडी मांटगोमरी, सर हेनरी लारेंस और कप्तान हडसन आदि भी वहाँ पहुँचे। उन लोगों का स्वागत आदि वहाँ बहुत अच्छी तरह से हुआ था। उन के ठहरने का प्रबंध कोठी बाग में किया गया था और स्वयं महाराज गुलाबसिंह भी उनके साथ बराबर वहीं रहे थे। उसी अवसर पर मियाँ प्रतापसिंह (जम्बू के वर्त्तमान महाराज) का जन्म हुआ था जिसके कारण सब स्थानों पर बहुत आनंद मनाया गया था। इसके उपरांत रणवीरसिंह, जवाहिरसिंह, मोतीसिंह तथा अन्य अनेक सरदारों के साथ महाराज गुलाबसिंह वजीराबाद गए। जब वे सुचेतगढ़ तक पहुँचे तो वजीराबाद के डिप्टी कमिश्नर मि० जान इंगलिस तथा मि० प्रिन्सेप ने उनका स्वागत किया और उनके छावनी में पहुँचने पर अँगरेजी तोपखाने ने सलामी सर की। वजीराबाद की छावनी में भी महाराज का स्वागत बहुत धूमधाम से हुआ और अनेक अफसर आकर उनसे मिले और उन्हें अपने साथ उनके ठहरने के स्थान तक ले गए। पहले तो दो दिन तक लार्ड डेलहौसी के साथ उनकी भेंट न हो सकी और लाट साहब ने अपने सेक्रेटरी द्वारा कहला दिया कि हमारे पैर में फोड़ा निकला है। अंत में गुलाबसिंह स्वयं उनके खेमे तक गए। वहाँ सेना ने सलामी सर की और लाट साहब ने स्वयं आगे बढ़ कर उनका स्वागत किया और उनसे हाथ मिला कर उन्हें अपनी दाहिनी ओर बैठाया। इसके उपरांत तोपखाने से फिर सलामी सर हुई और बड़े लाट लोगों को खिलअतें आदि देने लगे। रणवीरसिंह को एक भारी खिलअत और महारानी विक्टोरिया की तसवीर जड़ी हुई एक अँगूठी मिली थी। इसी प्रकार दीवान हरीचंद तथा अन्य सरदारों को भी खिलअत और भेंट मिली थी। दूसरे दिन महाराज गुलाबसिंह से मिलने के लिये बड़े लाट उनके डेरे पर गए। महाराज ने आधे रास्ते तक आकर उनका स्वागत किया। उस अवसर पर महाराज की ओर से बहुत से बहुमूल्य पदार्थ और घोड़े आदि लोगों को उपहार स्वरूप दिए गए थे। दूसरे दिन सेनाओं का निरीक्षण हुआ और तदुपरांत महाराज गुलाबसिंह विदा होकर जम्बू चले गए।

उसी वर्ष (सन् १८५०) में दारदू जाति के लोगों ने जो काश्मीर की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर बसते थे और जिन्होंने चिलास का सुदृढ़ पहाड़ी किला अपने अधिकार में कर लिया था, कुछ उत्पात किया और गुलाबसिंह के अधिकृत आस पास की बस्तियों को लूट लिया। बहुत अधिक जाड़ा पड़ने के कारण शीतकाल में तो उनका कोई प्रबन्ध न हो सका; पर वसन्त ऋतु में महाराज ने वजीर जोरावर, कर्नेल विजयसिंह, कर्नेल जवाहिरसिंह, पूजनसिंह और दीवान ठाकुरदास तथा बहुत बड़ी सेना और दूसरे अफसरों सहित दीवान हरीचंद को उस किले पर आक्रमण करने के लिये भेजा। वह किला बहुत ऊँचे स्थान पर था। तथापि महाराज की सेना इस आशा से उसे कुछ समय तक घेरे रही कि रसद आदि का अभाव होने पर किलेवाले आत्मसमर्पण कर देंगे; पर इसमें उन्हें सफलता नहीं हुई। महाराज की सेना की रसद आदि का प्रबन्ध भी ठीक नहीं था और न उन्हें आस पास के किसी स्थान से ही रसद मिलती थी। उधर किले में से रात के समय तो पुरुष गोलियाँ बरसाते थे और दिन के समय स्त्रियाँ बन्दूकें चलाती थीं। कर्नेल

देवीसिंह के अधीनस्थ सैनिकों ने संगल नामक स्थान पर एक बाड़ा बनाया था, पर रात के समय आस पास के निवासियों ने आक्रमण किया और कर्नल की जान बड़ी कठिनता से बची। महाराज की सेना हल्ला करके किला सर करना चाहती थी पर उनके पास चढ़ने की सीढ़ियाँ बहुत ही छोटी थीं। किलेवाले गोले और गोलियाँ बरसाने के सिवा ऊपर से पत्थर भी लुढ़काते थे जिससे महाराज की सेना के १५०० आदमी जिनमें कई बहादुर अफसर भी थे, मारे जा चुके थे। इतना सब कुछ होने पर भी घेरनेवाले हताश नहीं हुए और बराबर पेड़ों की पत्तियाँ और कन्द मूल आदि खाकर गुजारा करने लगे। इसी बीच में बहुमूत्र रोग से पीड़ित होने के कारण गुलाबसिंह का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया था। रणवीरसिंह उन दिनों सोपुर में रहते थे और उसी प्रांत का प्रबन्ध करते थे। उधर घेरा डालनेवालों को किसी तरह यह मालूम हो गया कि यदि किसी प्रकार किलेवाले जल पाने से वंचित किये जा सकें तो वे बहुत शीघ्र आत्मसमर्पण कर देंगे। अतः उन लोगों ने एक बड़ी सुरंग खोद कर किले के अन्दरवाले एकमात्र तालाब का पानी बाहर निकाल लिया। किलेवाले तीन दिन तक केवल तेल पीकर रहे और तब अन्त में वे लोग किले में आग लगा कर बाहर निकल कर भागने लगे। भागते समय बहुत से लोग मारे और कैद किए गए। महाराज के कई जिलों के अधिकारियों और अफसरों को किलेवालों ने कैद कर लिया था; उन कैदियों को वे अपने साथ ही लेते गए। पीछे उन अफसरों से कर देने की प्रतिज्ञा कराकर और उनके लड़कों को ओल में रख कर उन्हें छोड़ दिया गया।

ऊपर कहा जा चुका है कि इस युद्ध के समय गुलाबसिंह बीमार थे। बीमारी की दशा में जब उन्होंने सुना कि उनकी सेना को रसद नहीं मिल रही है तो उन्होंने स्वयं युद्ध स्थल तक जाने का विचार किया। उनके दरबारियों ने उन्हें उस अवस्था में यात्रा करने से रोका और उनमें से कुछ ने स्वयं वहाँ जाकर रसद आदि का प्रबन्ध करने का भार अपने ऊपर लेना चाहा। अतः महाराज ने दीवान निहालचन्द तथा पं० राजा खाक को इस सेवा पर नियुक्त करके वहाँ भेजा। इसी अवसर पर प्रसिद्ध ज्योतिषी व्रजलाल ने महाराज से यह भी कहा था कि अब तक आपके सेवकों ने या तो किला जीत लिया होगा या दो एक दिन में अवश्य जीत लेंगे और किले के अन्दर उन्हें बहुत सी रसद मिलेगी। उस समय तो महाराज को ज्योतिषी की बात पर विश्वास नहीं हुआ था; पर पीछे जब उन्हें मालूम हुआ कि ज्योतिषी की भविष्यद्वाणी बिलकुल सत्य उतरी थी तो उन्होंने उसे बहुत सा पुरस्कार दिया था।

स्वास्थ्य कुछ ठीक होने पर गुलाबसिंह श्रीनगर से जम्बू चले गए। जम्बू के निकट पहुँचते ही राजा जवाहिरसिंह की शिकायत करने के लिए राजा मोतीसिंह उनके पास पहुँचे। जवाहिरसिंह और मोतीसिंह दोनों ही राजा और भाई थे और उनका झगड़ा वहाँ तै नहीं हो सकता था इस वास्ते वे लोग अँगरेज अधिकारियों के पास लाहौर भेज दिए गए। जम्बू से गुलाबसिंह उत्तर की ओर थोड़ी दूर पर रियासी नामक स्थान में चले गए। वहाँ पहुँचने पर उन्हें मालूम हुआ कि गिलगित्त के थानेदार सन्तोषसिंह विद्रोहियों और नगरी के राजा की झूठी बातों में आकर किले से अपनी सेना सहित बाहर निकल आए थे और विद्रोहियों द्वारा मारे गए। पर मनावर किले के अधिकारी देवीदास ने वीरतापूर्वक शत्रुओं का सामना किया था; पर अन्त में वह भी विद्रोहियों द्वारा जिनकी संख्या ४००० से अधिक थी मारे गए। स्त्रियों को शत्रुओं के अत्याचार के भय से देवीदास ने पहले ही मरवा डाला था और अन्त में वीरतापूर्वक लड़कर उन्होंने अपने प्राण दिये थे। पुरी के किलेदार भूपसिंह की भी वही दशा हुई थी। किले में रसद न होने के कारण उन्हें विवश होकर बाहर निकलना पड़ा था। नगरी का राजा

यद्यपि पहले इस बात की कसम खा चुका था कि वह किलेवालों के प्राण नहीं लेगा पर उन लोगों के बाहर निकलते ही उसने छलपूर्वक सबों को मार डाला था। विद्रोहियों का सरदार गौहर रहमान था जिसने गिलगित्त विजय किया था और पकड़े हुए कैदियों को दास बना कर बेच दिया था। आगे चल कर इसका भी दमन हो गया था।

ठीक ऐसे अवसर पर जब कि गुलाबसिंह की सेना अपने राज्य के भीतरी उपद्रवों की शान्ति में लगी हुई थी, महाराज को कर्नल लारेन्स का भेजा हुआ एक खरीता इस आशय का मिला कि हजारा जिले के विद्रोहियों ने फिर उपद्रव आरंभ किया है इसलिए वहाँ की शान्ति के लिए तुरंत कुछ सेना भेजो। इस पर उन्होंने चार रेजिमेंटें भेज दीं जिन्होंने वहाँ जाकर प्रशंसनीय कार्य्य किया। उधर जवाहिरसिंह को कुछ लोगों ने यह कह कर भड़काया कि अँगरेज अधिकारियों ने राजा हीरासिंह का अधिकृत जसरौटा प्रांत तो आपको दिया ही पर किसी और प्रकार से आपकी जागीर नहीं बढ़ाई; इसलिए आपका लाहौर जाना बिलकुल व्यर्थ ही हुआ। गुलाबसिंह के मौलवी मजहर अली नामक एक सेवक ने तो उसे गुलाबसिंह की आधी अमलदारी ले लेने के लिए ही उत्तेजित किया। इन षड्यंत्रों के कारण अंत में अँगरेजों द्वारा मौलवी उस समय गिरिफ़्तार कर लिया गया जब कि वह पेशावर में स्वात प्रांत के लिए सेना संग्रह कर रहा था। जवाहिरसिंह फिर इस आशा से सर जान लारेन्स के पास लाहौर गए कि वह उन्हें गुलाबसिंह के अधीन न रखकर स्वतंत्र बना देंगे पर इसमें भी उन्हें सफलता नहीं हुई। इसके बाद उन्होंने गुलाबसिंह से लड़ने की भी तैयारियाँ की थीं पर गुलाबसिंह पहले से ही सचेष्ट हो गए थे इसलिए कोई लड़ाई झगड़ा नहीं हुआ।

महाराज गुलाबसिंह जब पहले एक बार बहुत बीमार हुए थे तो उन्होंने कर्नल लारेन्स पर अपना सारा राज्य रणबीरसिंह को दे देने की इच्छा प्रकट की थी और कर्नल महाशय ने भी यह बात स्वीकार कर ली थी। तदनुसार सम्वत् १९१२ के ६ ठे फागुन को (सन् १८५५) महाराज गुलाबसिंह ने अपने दत्तक पुत्र रणबीरसिंह को अपने राज्यासन पर बैठाया और स्वयं अपने हाथ से उन्हें केसर का तिलक लगाया। यह उत्सव मंडी में हुआ था और उसमें स्यालकोट छावनी के सब अफसर भी निमंत्रित किए गए थे। इसके बाद एक दरबार भी हुआ था जिसमें सब सरदार आदि उपस्थित थे। रणबीरसिंह को राज्याधिकार देकर महाराज गुलाबसिंह ने सब प्रकार के सांसारिक कार्य्य छोड़ दिए और काशमीर की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्हें गठिया हो गई थी। एक दिन स्नान करते समय उनकी तबियत बहुत खराब हो गई। यह समाचार सुनकर रणबीरसिंह तुरंत जम्बू से चल पड़े। उस अवसर पर मेरठ और दिल्ली में देशी पलटनों ने अँगरेजों को मार डाला था, उनके बंगले जला दिए थे और चारों ओर विद्रोह आरंभ कर दिया था। महाराज गुलाबसिंह ने पंजाब के चीफ कमिश्नर सर जान लारेन्स के पास रावलपिंडी में अपने दीवान को भेज कर कहला दिया कि यदि आवश्यकता हो तो मैं अपना सारा खजाना और फौज अँगरेज सरकार की सेवा के लिए दे सकता हूँ। उन्होंने अपने सब किले भी अँगरेजों को अर्पित कर दिए थे और उन अँगरेजी महिलाओं का पूरा पूरा स्वागत और आतिथ्य करने का वचन दिया था जो मरी या अन्य स्थानों से भाग कर उनके राज्य में आतीं। सर लारेन्स ने भी उनकी यह सेवा स्वीकार कर ली थी और दीवान हरीचन्द से सेनाओं को अपने अधीन कर लेने तथा दस लाख श्रीनगरी रुपये भेजने के लिए कहा था।

एक दिन महाराज गुलाबसिंह ने अपना आगम जान कर पं० शिवशंकर को अपनी अन्त्येष्टि क्रिया के संबंध में अनेक बातें बतलाईं। उसी अवसर पर उन्होंने अपने दीवान को अपनी एक जीवनी*

* यह जीवनी फारसी भाषा में लिखी गई थी। प्रस्तुत लेख उसी जीवनी के आधार पर तैयार किया गया है।

लिखने के लिए भी कहा था। धीरे धीरे महाराज की तबियत बिगड़ती गई और अन्त में संवत् १९१४ के २० वें सावन को (सन् १८५७) वे स्वर्गवासी हुए। अन्तिम समय उन्होंने सवा लाख श्रीनगरी रुपये, एक बहुत बड़ी जागीर, कई बाग, बहुत से घोड़े, हाथी और जवाहिरात तथा बहुमूल्य वस्त्र दान किए थे।

—:०:—

ऋग्वेद की यज्ञप्रशस्तियां।

वैदिक काल में यह प्रथा थी कि जब कोई राजा कोई बड़ा यज्ञ करता था और उसमें अभूतपूर्व दान देता था तब ऋषि लोग उस के यज्ञ और दान की प्रशस्तियाँ मन्त्रों में रचते थे। अथर्ववेद के देखने से अनुमान होता है कि पहले इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी नामक पाँच प्रकार के ग्रंथ ऋषियों ने वैदिक भाषा में लिखे थे। पर संहिताओं के संस्करण के पूर्व अर्थात् महाभारत के पहले ही ऐसे ग्रंथों का लोप हो गया था। यास्काचार्य्य को ऐसे ग्रंथों और उनके रचनेवालों का कुछ भी पता नहीं चला था और उन्होंने 'अत्रैतिहासमाचक्षते' इत्यैतिहासिकाः। लिख कर ही उनके मतों को उद्धृत किया है। वर्त्तमान संहिताकारों ने कुछ यज्ञप्रशस्तियों को ऋग्वेद में जगह जगह पर सूक्तों में रख दिया है। आज हम ऋग्वेद से ऐसी प्रशस्तियां निकाल कर यहाँ लिखते हैं। आशा है कि ये इतिहास-प्रेमियों के काम की होंगी।

१—अभ्यावर्त्तीचायमान् की प्रशस्ति।

इसकी प्रशस्ति ऋग्वेद मंडल ६ सूक्त २७ में है। चायमान्का पुत्र अभ्यावर्ती सम्राट् था। उसने राजसूय यज्ञ में चालीस गायों और कन्याओं के साथ कई रथ भरद्वाज ऋषि को दक्षिणा में दिये थे।

द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिंगा, वधूमन्तो मघवा मह्य सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति, दूणा शेयं दक्षिणा पार्थवानाम्॥

हे अग्निदेव, यज्ञ करने वाला चायमान् का पुत्र अभ्यावर्ती राजाओं का सम्राट् वधू * और रथ के साथ मुझे दो बीसी गैाएं देता है। यह दक्षिणा नाश रहित हो।

२—प्रस्तोकसृंजय की प्रशस्ति।

प्रस्तोक राजा सृंजय का पुत्र था। इसका दूसरा नाम दिवोदास भी था। यह शंबर जाति के असुर राजा को विजय कर बहुत सा धन लाया था। भरद्वाज गोत्री गर्ग और पायु आदि ऋषियों ने उससे यज्ञ कराया था। प्रस्तोक ने यज्ञ की दक्षिणा में गर्ग को दस घोड़े, दस रेशमी कपड़े, दस थैले, दस बहुमूल्य वस्त्र, दस सोने के पिंड (जो शायद निष्क थे) और बहुत सा धन दिया था। अथर्व गोत्री पायु को उसने दस अश्व-युक्त रथ और सैा गैाएं दी थीं। इसकी प्रशस्ति भरद्वाज गोत्रियों की लिखी हुई ऋग्वेद मंडल ६ सूक्त ४७ में हैः—

प्रस्तोकइन्नु राधसस्तइन्द्र दशकोशयीर्दशवाजिनोऽदात्
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः, शांबरंवसु प्रत्यग्रभीष्म। १।
दशश्वान्दशकोशान्दशवस्त्राधिभोजना,
दशोहिरण्यपिंडान्दिवोदासादसानिषम्। २।
दशरथान्प्रष्टिमतःशतंगा अथर्वभ्यः। अश्वथः पायवेऽदात्। ३।
महिराधोविश्वजन्यंदधानान् भारद्वाजान्त्साञ्जयोअभ्ययष्ट। ४।

हे इन्द्र, प्रस्तोक ने दस कोशयी (कोशावस्त्र) और दस घोड़े दिये। दिवोदास से अतिथिग्व का धन, जिसे उसने शंबर नामक असुर राजा से जीत कर लिया था, मैंने ग्रहण किया॥१॥ दस घोड़े, दस कोश, दस बहुमूल्य वस्त्र और सोने के दस पिंड दिवोदास से मुझे मिले॥२॥ अश्वथ ने अथर्वगोत्री पायु को दस रथ जिनमें घोड़े जुते थे और सैा गैाएं

* देखो मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक २८
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजेकर्मकुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते॥

दीं ॥ ३ ॥ सृंजय के पुत्र प्रस्तोक ने विश्वजन्य (सब के हितकारी) श्रेष्ठ ऐश्वर्य वा धन के रखने-वाले भरद्वाज गोत्रियों की इस प्रकार पूजा की ॥४॥

३—सुदास पैजवन की प्रशस्ति।

यह सुदास राजा पिजवन गोत्री दिवोदास का पुत्र था। इसके नाना का नाम देववत था। यह सिंधु-नद के पश्चिम (अफ़गानिस्तान आदि) का राजा था। इसे पहले वशिष्ठजी ने यज्ञ कराया था। उस यज्ञ में सुदास ने वशिष्ठ को दो सौ गाएँ और दो रथ कन्याएँ बैठा कर तथा चार घोड़े सुनहले जीन सहित दक्षिणा में दिये थे। पीछे सुदास ने वशिष्ठजी से बिगड़ कर विश्वामित्र को कोशल से अपना अश्वमेध यज्ञ कराने के लिये बुलाया। पहले वशिष्ठ ने उसे बहुत कुछ समझाया पर जब राजा ने नहीं माना तब वे विश्वामित्र के विरोधी हो गये और उनके अनुयायियों ने विश्वामित्र पर जब वे व्यास और सतलज के संगम पर पहुँचे डाका डाला और उन्हें बाँध कर ले चले। उस समय विश्वामित्र ने जो कुछ कहा और किया उसका वर्णन ऋग्वेद मं० ३ में है। सुदास के उस दान की प्रशस्ति वशिष्ठजी की रची हुई ऋग्वेद मंडल ७ सक्त १८ में हैः—

> द्वे नप्तुर्देववतः शतेगोद्वारथावधूमन्तासुदासः।
> अर्हन्नग्ने पैजवनस्यदानंहोतेवसद्मपर्येमरेभन् ॥ १ ॥
> चत्वारोमापैजवनस्यदानाः स्मद्दिष्टयःकृशनिनो निरेके।
> ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकंतोकायश्रवसेवहन्ति ॥२॥
> यस्यश्रवोरोदसीअन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णेविबभाजा विभक्ता।
> सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नियुध्यामधिमशिशादभीके ॥३॥
> इमंनरोमरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः।
> अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणासं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥ ४ ॥

हे अर्हन अग्निदेव! देववत के नाती पैजववंशी सुदास के (यज्ञ में) मैं होता बन अर उससे सौ गायें और दो रथ जिनमें वधू सवार थीं दान में लेकर अपने घर आया ॥१॥

सुदास पैजवन ने जो दान में चारों (घोड़े) दिये थे वे सोने से लदे हुए और पृथिवी पर सीधे चलने वाले थे। उसने वह दान मुझे दुर्गति में दिया था ॥२॥ जिस के यश पृथिवी और द्युलोक में और विभक्त (दिया हुआ दान) सिर सिर पर बँटे हुए हैं। सातों नद जिसकी इंद्र के तुल्य स्तुति करते हैं कि (उसने) युद्ध में अपने प्रतिद्वंद्वियों का नाश कर डाला ॥३॥ हे नेता मरुत्! सुदास की सेवा करो जो अपने पिता दिवोदास के तुल्य है पैजवन के घराने की रक्षा करो। उस परिचरण की कामनावाले राजा का क्षत्र अजर अमर हो।

४—आसंग की प्रशस्ति।

प्लयोग के पुत्र आसंग नामक राजा ने मेध्यातिथि से यज्ञ कराया था उसने दक्षिणा में मेध्यातिथि को उत्तम साजों से युक्त घोड़ों सहित रथ और दस बैल दिये थे। उसकी यज्ञ-प्रशस्ति ऋग्वेद मंडल ८ सूक्त १ में हैः—

> स्तुहिस्तुहीदेते घाते मंहिष्ठासो मघोनाम्,
> निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्यामघस्यमेध्यातिथे ॥१॥
> आयदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथेरुहम्।
> उत वामस्यवसुनश्चिकेततियोअस्तियाद्वः पशुः ॥२॥
> य ऋज्रामह्यंमामहे सहत्वचाहिरण्यया।
> एष विश्वान्यभ्यस्तुसौभगासंगस्य स्वनद्रथः ॥३॥
> अधप्लायोगिरतिदासदन्यानासंगोअग्नेदशभिः सहस्रैः।
> अधोक्षणोदशमह्यंरुशंतो नळाइव सरसो निरतिष्ठन् ॥४॥

हे मेध्यातिथि। इसकी स्तुति करो, इसकी। यह धनवानों में तुम्हें सब से अधिक धन देने-वाला है; इसके घोड़े के सामने दूसरे घोड़े लज्जित हो जाते हैं, यह सन्मार्ग गामी है और इसकी ज्या बड़ी उत्कृष्ट है ॥१॥ जिसके श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ पर (जब) मैं श्रद्धा से सवार होता हूँ (उस समय) जो यदु के पशु हैं वे श्रेष्ठ धन को चमकाते हैं ॥२॥ जिस (आसंग) ने मुझे सुनहली त्वचा (झूल) के साथ ऋजुगामी (घोड़ों) को मुझे दिया उस आसंग का शब्दायमान् रथ समस्त सौभाग्य को प्राप्त हो। हे अग्नि आसंगप्लयोगि ने मुझे अन्यों से दस हजार गुना अधिक दिया। उसके

दिये हुए दस बैल मुझे प्रकाशित करते हैं। वे खड़े होने पर नदी के किनारे के नर के समान हैं।

५—विभिंद की प्रशस्ति।

विभिन्द राजा ने यज्ञ में मेध्यातिथि को अड़तालीस हज़ार गायें और रणा की दो नतिनियां माकी को दक्षिणा में दी थीं। उसकी यज्ञ प्रशस्ति ऋग्वेद मंडल ८ सूत्र २ में इस प्रकार है।

शिक्षाविभिन्दोअस्मैचत्वार्युनतद्ददत्। अष्टापरः सहस्ता ॥१॥
उतसुत्ये पयोवृधामाकीरणस्यनप्त्याजनित्वनाय मामहे ॥२॥

हे विभिन्द तू ने इसे चार अयुत (चालीस हज़ार) से ऊपर आठ हज़ार दिया ॥१॥ और दूध बढ़ानेवाली दो माकी* जो रणा† की नतिनी हैं जनन (बियसने) के लिये मुझे मिलीं ॥२॥

६—पाकस्थाम कौरायण की प्रशस्ति।

पाकस्थाम कौरायण भोजवंशी राजा था, उसने मेध्यातिथि काण्व को लाल रंग का घोड़ा, वस्त्र, अन्न और अभ्यंगादि दिये थे। उसकी प्रशस्ति मेध्यातिथि की लिखी हुई ऋग्वेद के मंडल ८ सूक्त ३ में है।

यभ्रेदुरिन्द्र मरुतः पाकस्थाम कौरायणः।
विश्वेषां त्मनाशोभिष्ठमुयेव दिवि धावमानम् ॥१॥
रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरंकक्ष्य प्राम्।
अदाद्रायो विबोधनम् ॥२॥
यस्या अन्ये दश प्रतिधुरंवहंति वह्नयः।
अस्तं वयो नतुग्र्यंम् ॥३॥
आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यंजनम्।
तुरीयभिद्रोहितस्य पाकास्थामानंभोजंदातार बवम् ॥४॥

जो इंद्र और मरुत ने दिया उसी के समान सब में स्वयं शोभित (धन) जो आकाश में धावमान् है पाकस्थामा कौरायण ने मुझे दिया ॥१॥ पाकस्थामा ने बहुत धन का बोधक लाल रंग का घोड़ा जो तंग से कसा था दिया ॥२॥ जिसकी जगह धुर को अन्य दस खींचनेवाले खींचते हैं और तुग्र्य को घर ले जानेवाले के समान हैं ॥३॥ अपने बाप के बेटे (उसने) वास दिया भोज दिया और अभ्यंजन दिया। ऐसे रोहित (लाल रंग के घोड़े) के देनेवाले तुरीय भोज पाकस्थामा की मैं प्रशंसा करता हूँ ॥४॥

७—कुरंग की प्रशस्ति।

कुरंग ने देवातिथि काण्व को सौ घोड़े दिये थे और साठ हज़ार गायें दी थीं जिन्हें उन्होंने प्रियमेध नामक अपने संबंधियों में बाँट दिया था। उसकी प्रशस्ति मंडल ८ सूक्त ४ में है।

स्थूरंराधः शताश्वं कुरंगस्य दिविष्टिषु।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषुतुर्वशेष्वमन्महे ॥१॥
धीभिः सातानि काण्ववस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः।
षष्टिंसहस्रानुनिर्मजामजे निर्यूथा निगवामृषिः ॥२॥
वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः।
गां भजन्त मेहनाश्वं भजन्त मेहना ॥३॥

तेजस्वी सुभग कुरंग के मोटे सौ घोड़े और धन यज्ञों में उनके मित्र तुर्वशों के बीच मुझे मिले ॥१॥ कण्व गोत्री याजक के स्तोता तेजस्वी प्रियमेधों ने उन्हें परस्पर बांट लिया, साठ हज़ार शुद्ध गायों के यूथ ऋषि को मिले थे ॥२॥ मैं गायों के ऐश्वर्य्य से और घोड़ों के ऐश्वर्य्य से उन्हें पाकर पेड़ के समान हरहराने लगा।

८—कशु चैद्य की प्रशस्ति।

चेदि के पुत्र कशु ने अश्विनीकुमार का यज्ञ किया था। उसमें उसने ब्रह्मातिथि काण्व को सौ ऊँट दस हज़ार गाएं और दस राजा, जिन्हें वह युद्ध में जीत कर पकड़ लाया था, दक्षिणा में दिये थे। उसकी प्रशस्ति ऋग्वेद मंडल ८ सूक्त ५ में है:—

ता मे अश्विना सनीनां विद्यातां नवानाम्।
यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रदश गोनाम् ॥१॥
यो मे हिरण्य सन्दृशो दशराज्ञो अमंहत।
अधस्पदा इच्चेद्यस्य।कृषयश्चर्मम्ना अभितोजनाः ॥२॥

हे अश्विनीकुमारो! तुम मेरे नये धनों को जानो जिस प्रकार चेदि के पुत्र कशु ने मुझे सौ ऊँट और दस हज़ार गायें दीं। जिस चेदि के पुत्र ने मुझे हिरण्य

---

* 'मा की' गो की एक जाति थी जो बहुत दूध दिया करती थी। इसका नाम ऋग्वेद के अनेक स्थलों में आया है।

† 'रणा' नामक देश के बैल। वेदों में उपारणा प्रदेश का नाम आता है जो रणा के किनारे था। इसी रणा को इरणा (ईरान) भी कहते थे।

सदृश दस राजा दिये उस कशु के पैर के तलुवे को उसकी प्रजा चर्मधारी सदा सेवन करती है।

९—तिरिन्दिर पारशव्य की प्रशस्ति।

तिरिंदिर परशु का पुत्र यदुवंशी राजा था। वह ककुह प्रदेश (काबुल) में राज्य करता था। उसने कण्व गोत्री वत्स ऋषि को एक हज़ार का धन (शायद निष्क) दिया था और चार जोड़ी ऊँट दिये थे। उसने सामग पज्र के पुत्र कक्षीवान् को तीन हज़ार घोड़े और दस हज़ार गाएं दी थीं। उसकी प्रशस्ति ऋग्वेद मंडल ८ सूक्त ६ में है।

शतमहंतिरिन्दिरेसहस्रं पर्शावाददे
राधांसि याद्वानाम् ॥१॥
त्रीणिशतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम्।
ददुष्पज्राय साम्ने ॥२॥
उदानट्ककुहोदिवमुष्ट्रा ञ्चतुर्युजोददत्
श्रवसा याद्वंजनम् ॥३॥

मैंने परशु के पुत्र तिरिंदिर नाम के यादवों राजा से एक हज़ार धन पाया ॥१॥ उसने पज्र के वंशज सामग कक्षीवान् को तीन सौ घोड़े और दस हज़ार गाएं दी हैं। उसने यादवों की कीर्ति को और ककुह को उठाकर स्वर्ग पहुँचा दिया।

१०—पौरुकुत्स त्रसदस्यु की प्रशस्ति।

पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु ने कण्व ऋषि को सुवास्तु (स्वात) नदी के किनारे यज्ञ करके पाँच सौ कन्याएं, बहुत सा धन और वस्त्र तथा दो सौ सत्तर गाएं और एक काला सांड जो उनके आगे चलता था दक्षिणा में दिया था। उसकी प्रशस्ति मंडल ८ सूक्त १९ में है।

अदान्मे पौरुकुत्सः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम्।
मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥१॥
उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधितुग्वनि।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद्वसुर्दियानां पतिः ॥२॥

दानी राजा सत्पति पौरुकुत्स त्रसदस्यु ने मुझे पाँच सौ वधुएँ दीं और उनके साथ बहुत सा धन और वस्त्र दिया। यह दान सुवास्तु नदी के किनारे दिया गया। तीन सौ सत्तर दी हुई गायों का पति काला सांड उनके आगे चलता था।

११—चित्र की प्रशस्ति।

चित्र* सारस्वत प्रदेश का राजा था। उसने सरस्वती के किनारे यज्ञ किया था। कण्वसौभरि इसके याजक थे, उसने उन्हें बहुत सा धन दक्षिणा में दिया था। उसकी प्रशस्ति मंडल ८ सूक्त २१ में यह है।

इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती सुभगा ददिर्वसु।
त्वं वा चित्र दाशुषे ॥१॥

* स्कंदपुराण से ज्ञात होता है कि चित्र ने सूर्य्य का तप किया और उसके प्रभाव से वह सर्वज्ञ कुशल हो गया। धर्मराज को इसी बीच में एक लेखक की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने चित्र को अपना लेखक बनाना चाहा। एक दिन चित्र समुद्र के किनारे अग्नितीर्थ नामक स्थान में स्नान कर रहे थे, उन्हें यम के दूतों ने यम की आज्ञा से पकड़ लिया और उठा कर यमलोक ले गये। वहां वे चित्रगुप्त नाम से यमराज के लेखक हुए।

एवं तु स्तुवतस्तस्य चित्रस्य विमलात्मनः।
तथातुष्टः सहस्रांशुः कालेन महता विभुः ॥
अब्रवीद्वत्स भद्रं ते वरं वरय सुव्रत !।
सोऽब्रवीद्यदिमेतुष्टो भगवांस्तीक्ष्णदीधिते।
प्रौढत्वं सर्वकार्य्येषु जायतांसन्मतिस्तथा ॥
तत्तथेति प्रतिज्ञातं सूर्य्येण वरवर्णिनि !।
ततः सर्वज्ञतां प्राप्तश्चित्रो मित्रकुलोद्भवः ॥
तं ज्ञात्वा धर्मराजस्तु बुध्या परमया युतः।
चिन्तयामास मेधावी लेखकोयं भवेद्यदि ॥
जाता मे सर्वसिद्धिश्च निर्वृतिश्च पराभवेत्।
एवं चिन्तयतस्तस्य धर्मराजस्य भामिनि ! ॥
अग्नितीर्थं गतश्चित्रः स्नानार्थं लवणाम्भसि।
सतत्र प्रविशन्नेव नीतस्तुयमकिंकरैः ॥
सशरीरो महादेवि यमादेशपरायणैः।
सचित्रगुप्तनामाभूत् विश्वचारित्रलेखकः ॥

चित्रइद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥२॥

क्या यह धन इन्द्र ने दिया अथवा सुभगा सरस्वती ने यह धन दिया अथवा हे चित्र तूने दिया है ।१। चित्र ही राजा है जो हजार अयुत देते हुए सरस्वती के किनारे मेघ के समान बरसता है । अन्य सब राजा राजक (राजुक तुच्छ) हैं ।

—:o:—

सभा का कार्यविवरण ।

प्रबन्धकारिणी-समिति ।

मंगलवार तारीख़ ५ मई १९१४—सन्ध्या के ६ बजे

स्थान-सभाभवन ।

(१) गत अधिवेशन (ता० ३१ जनवरी १९१४) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(२) हिन्दी पुस्तकों की खोज के सम्बन्ध में पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० की सन् १९१२ की रिपोर्ट उपस्थित की गई ।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार की जाय और गवर्नमेंट की सेवा में भेज दी जाय ।

(३) बाबू तेजूमल एम० कनल का २६ फरवरी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें "देशसेवा" पर एक सर्वोत्तम लेख के लिये उन्होंने ५) रु० का मेडल सभा द्वारा देने के लिये लिखा था और इस लेख में किन किन बातों का उल्लेख होना चाहिए उसका वर्णन किया था ।

निश्चय हुआ कि सभा को दुःख है कि वह इस मेडल के लिये लेख लिखवाने का प्रबन्ध नहीं कर सकेगी ।

(४) पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि पण्डित केदारनाथ पाठक ने उन्हें बाबू राधाकृष्णदास का जीवनचरित्र लिखने में जो सहायता दी है उसके लिये पाठक जी को इस पुस्तक की ५ प्रतियाँ सभा से मिलनी चाहिए ।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय ।

(५) पण्डित बाबूराम अवस्थी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि यदि सभा "हवाई जहाज़" और "पदार्थ-विज्ञान से लाभ" पर लेख भेजने का समय बढ़ा दे तो वे इन दोनों विषयों पर सभा के पास लेख भेज सकते हैं ।

निश्चय हुआ कि पण्डित बाबूराम अवस्थी को लिखा जाय कि इस वर्ष सभा द्वारा मेडलों के लिये जो विषय नियत हैं उनमें हवाई जहाज़ का विषय भी है । उक्त विषय पर यदि वे ३१ दिसम्बर १९१४ तक लेख भेज सकें तो उत्तम होगा ।

(६) ब्यावर की म्युनिसिपेल कमेटी, हरदोई के नागरीप्रचारक पुस्तकालय और बम्बई के मारवाड़ी पुस्तकालय के पत्र उपस्थित किए गए जिनमें उन्होंने अपने पुस्तकालयों के लिये सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकें अर्द्धमूल्य पर माँगी थीं ।

निश्चय हुआ कि उन्हें इन पुस्तकों की एक एक प्रति अर्द्धमूल्य पर दी जाँय ।

(७) बालाघाट के श्रीयुत पण्डा बैजनाथ जी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि यदि सभा मिस्टर जी० स्पिलर की ट्रेनिङ्ग आफ़ दी चाइल्ड नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करे तो वे इसके लिये सभा को ६०) रु० की सहायता देंगे ।

निश्चय हुआ कि इस पुस्तक की एक प्रति मँगवा कर पण्डित सर्यू नारायण त्रिपाठी के पास भेज दी जाय और उनसे प्रार्थना की जाय कि वे इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने के सम्बन्ध में सभा को अपनी सम्मति दें ।

(८) ठाकुर केशरीसिंह बारहट का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि सभा "ज्योतिषप्रबन्ध" की १०० प्रतियों के स्थान में केवल ५० प्रतियाँ लेकर उन्हें इस लेख को पुस्तकाकार निकालने की आज्ञा दे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(९) पण्डित साँवल जी नागर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा के पुस्तकालय के अँगरेज़ी विभाग से पुस्तकें लेने की आज्ञा माँगी थी।

निश्चय हुआ कि उन्हें एक बार में एक पुस्तक के लेने की आज्ञा दी जाय।

(१०) हिन्दी साहित्य सम्मेलन कार्यालय के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने कार्यालय के लिये हिन्दी शब्दसागर तथा नागरीप्रचारिणी पत्रिका दिए जाने के सम्बन्ध में लिखा था।

निश्चय हुआ कि ये दोनों हीं उन्हें बिना-मूल्य दिए जायँ।

(११) उन सज्जनों की नामावली उपस्थित की गई जिन्होंने अब तक सभा के स्थायी कोश में २००) रु० वा इससे अधिक द्रव्य प्रदान किया है और जिनके नाम सभा के निश्चय के अनुसार पत्थर वा संगमरमर पर खोद कर सभा-भवन में लगना चाहिए।

निश्चय हुआ कि इसके व्यय का एक एस्टिमेट समिति के आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(१२) १९ नवम्बर १९१३ से २८ नवम्बर १९१३ और १५ फरवरी १९१४ से २० अप्रैल १९१४ तक बीमारी के वेतन के सम्बन्ध में पं० केदारनाथ पाठक का पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि पण्डित केदारनाथ पाठक को इतने दिनों का पूरा वेतन दिया जाय और पं० कन्हैयालाल को जो पाठक जी ने अपने स्थान पर कार्य करने के लिये भेजा था उन्हें पाठक जी अपने पास से वेतन दें।

(१३) पण्डित साँवल जी नागर का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि हिन्दी विश्वकोश में सभा के शब्दसागर से बहुत से शब्द और उनके अर्थ ज्यों के त्यों उद्धृत कर लिये गए हैं जिससे सभा को बहुत हानि पहुँचेगी। अतः इस विषय में सभा को उचित कारखाई करनी चाहिए।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव बाबू गौरीशंकरप्रसाद जी की सम्मति के सहित आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(१४) पण्डित रामनारायण मिश्र का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि "मनोरंजन सीरीज़" नाम की पुस्तकमाला जिसे बाबू श्यामसुन्दर दासजी निकाला चाहते हैं इस सभा द्वारा प्रकाशित की जाय।

निश्चय हुआ कि निम्नलिखित सज्जनों से प्रार्थना की जाय कि वे इस प्रस्ताव पर भली भाँति विचार कर इस सम्बन्ध में सभा को अपनी सम्मति दें अर्थात् बाबू श्यामसुन्दर-दास, बाबू गौरीशंकरप्रसाद और पण्डित रामनारायण मिश्र।

(१५) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबन्धकारिणी-समिति।

शनिवार तारीख़ १६ मई १९१४ सन्ध्या के ६ बजे

स्थान-सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (तारीख़ ६ मई १९१४) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) हिन्दी की मनोरंजन पुस्तकमाला को निकालने के सम्बन्ध में सब कमेटी की रिपोर्ट उपस्थित

की गई जिसमें उस कमेटी ने सम्मति दी थी कि बाबू श्यामसुन्दरदास जी से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक सभा की ओर से इस पुस्तकमाला के प्रकाशन का प्रबन्ध कर दें।

निश्चय हुआ कि बाबू श्यामसुन्दरदास जी से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक ऐसा प्रबन्ध करें जिससे कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार पुस्तकमाला प्रकाशित हो सके।

(३) ग्वालियर की हस्तलिपि परीक्षा के पर्चे उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि इनकी परीक्षा के लिये निम्नलिखित सज्जनों की सब कमेटी बना दी जाय अर्थात् बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल० एल० बी०, बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० और पण्डित रामचन्द्र शुक्ल।

(४) सभा के २९वें नियम के अनुसार सन् १९१४–१५ के लिये पदाधिकारियों और प्रबन्धकारिणी-समिति के सभासदों के चुनाव के लिये निम्न-लिखित सूची तयार की गईः—

एक सभापति और दो उपसभापति—

पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०
पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०
रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स
पण्डित रामावतार पाण्डेय
उपाध्याय पण्डित बद्रीनारायण चौधरी
पण्डित रामनाराण मिश्र बी० ए०

एक मंत्री और एक उपमंत्री

बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल० एल० बी०
पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए०
बाबू ब्रजचन्द
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा

प्रबन्धकारिणी समिति के सभ्य।

काशी से ४—बाबू जुगलकिशोर।
बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल० एल० बी०।
बाबू वेणीप्रसाद।
बाबू ब्रजचन्द्र।
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा।
पण्डित माधवप्रसाद पाठक।
पण्डित गिरिजादत्तवाजपेयी।
दूबे सांवल जी नागर।
गोस्वामी रामपुरी।
बाबू माधवप्रसाद।
बाबू सम्पूर्णानन्द।

मध्यभारत से १—पण्डित श्यामबिहारीमिश्र एम० ए०।
पण्डित गणपत जानकीराम दुबे बी० ए०।

संयुक्त प्रदेश से १—बाबू शिवकुमारसिंह।
बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन।
पण्डित शुकदेव बिहारी मिश्र।

राजपुताने से १—पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०।
रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ चौवे।

(४) पण्डित विक्रमादित्य त्रिपाठी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रार्थना की थी कि वे इस सभा के सभासद चुन लिये जांय और उनका चन्दा क्षमा किया जाय।

निश्चय हुआ कि उनकी यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की जा सकती।

(६) कुदरत अली दफ़्री का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया जिसमें उसने अपने एक मास का वेतन पेशगी दिए जाने के लिये प्रार्थना की थी।

निश्चय हुआ कि सभा के किसी कार्यकर्त्ता को किसी अवस्था में पेशगी वेतन न दिया जाय।

(७) पण्डित उमाकान्त शुक्ल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि बनारस की

दीवानी अदालत में सभा की ओर से जो मुहर्रिर नियत है वह नागरी में मुफ़ अर्जियाँ लिखने की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देता। अतः सभा इसका उचित प्रबन्ध करे।

निश्चय हुआ कि मोहर्रिर से इस विषय में उत्तर मांगा जाय।

(८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण अधिवेशन।

शनिवार तारीख ३० मई १९१४—सन्ध्या के ६ बजे। स्थान-सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० २८ मार्च १९१४) का कार्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) प्रबन्ध कारिणी समिति के तारीख ३१ जनवरी और ५ मई १९१४ के कार्यविवरण सूचनार्थ उपस्थित किए गए।

(३) सभासद होने के लिए निम्नलिखित सज्जनों के फ़ार्म उपस्थित किए गए—

(१) बाबू अम्बिकाप्रसादगुप्त-सराय गोवर्द्धन—काशी ३) (२) पण्डित ओंकारलाल त्रिपाठी—शाहपुरा—मेवाड़ १॥) (३) बाबू अनन्तप्रसाद गौड़—भारद्वाजी टोला—काशी १॥) (४) चौ० गोपीनाथसिंह-मेडिकल कालेज-लखनऊ १॥) (५) पं० गयाप्रसादपांडे—अमरौधा—जि० कानपुर १॥) (६) पं० केशवानन्द चौबे—स्यु टर—छुरा-वाया राजिम ५) (७) बाबू अनिरुद्धसिंह—नीलगाँव—जि० सीतापुर ३) (८) पं० विद्याधर झा—मीरघाट—काशी १॥) (९) पं० कालीचरण त्रिवेदी—अन्नपूर्णा प्रेस—पुरुलिया—मानभूम ६) (१०) बाबू बिहारीलाल सराफ़—रानीगंज ई० आई० आर ३)।

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जाँय।

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—(१) पं० सोमनाथ नायक पालना—महल्ला भिखारीदास, काशी। (२) पं० पी० एन० पाटंकर—धार (३) बाबू महादेवप्रसाद गुप्त—काशी।

(५) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं:—

पण्डित माधवराव सप्रे बी० ए०।
शालोपयोगी भारतवर्ष।

पण्डित सूर्यनारायण त्रिपाठी, जबलपुर।
आदर्शवीरांगना वा रानी दुर्गावती।

बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०—काशी।
हिन्दी कोविदरत्नमाला दूसरा भाग।
The Government of India.

हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मंडली, खंडवा।
मिश्रबन्धुविनोद पहिला भाग।

ठाकुर हनुमन्तसिंह—आगरा
महाराष्ट्रकेशरी शिवाजी
महादेव गोविन्द रानाडे
भीष्मपितामह
मार्टिन लूथर

पण्डित सुदर्शनाचार्य बी० ए०, गृहलक्ष्मी कार्यालय, इलाहाबाद
आदर्शबहू और भाई बहिन
प्रेमलता
लक्ष्मीबहू
सती लक्ष्मी

मिसर्स आर० एल० वर्म्मन एण्ड को, कलकत्ता
लण्डन रहस्य भाग १ सं० १—४

मेनेजर, सत्यग्रन्थमाला आफ़िस, प्रयाग
सत्यग्रन्थमाला सं० ७

श्रोत्रिय कृष्ण स्वरूप बी० ए० एल० एल० बी०, मुरादाबाद
आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या

बाबू मुख्त्यारसिंह वकील, मेरठ
वैज्ञानिक विश्वकोश

पण्डित साँवल जी नागर—काशी
कलियुग

श्रीयुत सम्पादक, जयाजीप्रताप, ग्वालियर
चन्द जरूरी नसीहतें
मास्टर हरिद्वारीसिंह, अध्यापक, महाविद्यालय, ज्वालापुर
भारतीय शिष्य ईसा
पण्डित गंगाशंकर पंचौली, सदर हाईस्कूल, भरतपुर
भरतपुरवृत्त
व्यापारशिक्षक
करण लाघव
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा, काशी
सूर्यकान्ता
वीरजयमल
मेनेजर, सत्यवादी, गिरगाँव, बम्बई
वनवासिनी
डाक्टर के० एम० घोष एल० एम० एस०, काशी
धातुदौर्बल्य
बाबू सम्पूर्णानन्द बी० एस० सी०, काशी
धर्म्मवीर गान्धी
हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, गिरगाँव, बम्बई
चौबे का चिट्ठा
बाबू दयाचन्द्रजैन बी० ए०, जीवदयाविभाग, भा० जै० महामण्डल, लखनऊ
मनुष्याहार
मांसभक्षण पर विचार
अहिंसा
पण्डित श्रीरामशर्म्मा, १६० सूतापट्टी, कलकत्ता
श्रीमद्भगवद्गीता भाषाटीका
बाबू पन्नालाल जैन, काशी
जैनेन्द्रप्रक्रिया
तत्त्वार्थ राजवार्तिक
मंत्री, जुबिली नागरी भण्डार कार्यालय, बीकानेर
देशी राज्यों में हिन्दी और उसके प्रचार के उपाय
भारत की गवर्न्मेंट
Quinquennial Report on the Progress of Education in India 1907-12 Vols 1 and II.

कुंअर क्षत्रपति सिंह जी, कालाकाँकर
भर्तृहरिनिर्वेद नाटक की १२५ प्रतियाँ
एशियाटिक सोसायटी आफ़ बंगाल, कलकत्ता
Journal and Proceedings of the Society Vol IX Nos. 7-9.
पण्डित बच्चनपांडे, गवर्न्मेण्ट हाईस्कूल, इटावा
होरेशियस की ७४१ प्रतियाँ
बनारस म्युनिसिपल बोर्ड
Health Officer's Report for the year 1913.
Indian Antiquary for March, April and May 1914.
Indian Thought Vol VI Nos. 2 and 3.
खरीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त
भारीश्रम, सोमलता उपन्यास, श्रीदेवी, रम्भा-शुकसम्वाद, गीतगुंजार, दीपनिर्वाण, महेन्द्र-मोहिनी, भाषा महाभारतसार, दिल्लीदरबार, साहसी डाकू।
(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण अधिवेशन

शनिवार तारीख २७ जून १९१४—सन्ध्या के ६३/४ बजे। स्थान—सभाभवन

(१) गत अधिवेशन (ता० ३० मई १९१४) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।
(२) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के पत्र उपस्थित किए गए:—

(१) पण्डित नागेश्वरनाथ, नागेश्वर प्रेस, काशी १॥) (२) ठाकुर लक्ष्मणसिंह क्षत्रिय, ताल्लुकेदार, बनियामऊ, जि० सीतापुर ५) (३) बाबू मन्मथनाथ बेनर्जी, गणेशमुहल्ला (बंगालीटोला) काशी १॥) (४) राय बेनीप्रसाद मंत्री, हिन्दी भाषाप्रचारिणी सभा, मुजफ्फ़र-पुर १॥) (५) बाबू जगदम्बसहाय, मकान चमारीसाहु, महल्ला टिलहा, गया ५) (६)

बाबू मोहनलाल, हेडमास्टर, मिडिलस्कूल, पनागर, जि० जबलपुर ३) (७) लाला बालाप्रसाद, पनागर, जि० जबलपुर ५) (८) बाबू बांकेबिहारिलाल, ग्रो० ग्रार० लोकोशेड, मुगलसराय १॥) (९) पं० रघुवीरप्रसाद अवस्थी, २६० जूनीकलाल लाइन, सीतावर्डी, नागपुर १॥) (१०) बाबू श्यामकृष्णसहाय बैरिस्टर, रांची ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय।

(३) निम्न लिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुएः—

(१) बाबू लायकसिंह, डिपटी कलेकृर, गोंडा (२) वैद्य शंकरलाल हरिशंकरजी, आयुर्वेदोद्धारक औषधालय, मुरादाबाद (३) गोस्वामी मोहनलाल, आयुर्वेदीय औषधालय, मैनगंज, एटा (४) बाबू कमलाप्रसाद—वैश्य बोर्डिंग हाउस, आगरा (५) कुमारी कलावती गार्गी—लखनऊ (६) पण्डित खेतलदास मिश्र, एलाएन्स बंक आफ़ शिमला, मसूरी, (७) पण्डित विनायक केशव, फ़ारेस्ट सेट्लमेंट आफ़िसर, पिछोर, झांसी (८) पण्डित बच्चूलाल, इन्सपेकृिंग पण्डित, हथुआ राज्य (९) पण्डित सुन्दरलाल, संस्कृतपुस्तकोन्नति-सभा, इटावा (१०) बाबू अम्बिकाप्रसाद सिंह रामापुरा, काशी (११) पं० बद्रीनारायण मिश्र, डिपटीइन्स्पेकृर आफ़ स्कूलस, सीतापुर (१२) बाबू केशवदास, सावमहल्ला, काशी (१३) बाबू अमरनाथ, ब्रह्मनाल, काशी (१४) कुमारी हरदेवी गार्गी, लखनऊ।

(४) मंत्री ने सूचना दी कि निम्नलिखित सभासदों के यहां सभा से नागरीप्रचारिणी पत्रिका अथवा चन्दे के लिये जो पत्रादि जाते हैं उन्हें वे लैाटा देते हैंः—(१) बाबू पर्वतराव सीतालय, डिपटी रेंजर, ककरौआ, पोहरी, ग्वालियर (२) राव बैजनाथदास शाहपुरी, कोतवाल पुरा, काशी (३) पं०रामनारायण वैद्य, बाबर शहीद की गली, काशी (४) बाबू कन्हैया लाल, सेवकराम सदावर्ती की गली, काशी (५) बाबू गौरीशंकरप्रसाद, औसानगंज का गोला, काशी (६) बाबू नारायणदास पारिख, ठठेरी बाज़ार, काशी (७) बाबू मकसूदनलाल, रानीकुआं, काशी (८) पण्डित मुरलीधर झा, रामकटोरा, काशी (९) बाबू रघुनाथदास, चौक, काशी (१०) बाबू शिवबालकराम, मैनेजर, काशी कोआपरेटिव बंक, काशी (११) पण्डित श्यामसुन्दर, चौखम्भा, काशी (१२) बाबू श्रीदास गुप्त, बुलानाला, काशी।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों के नाम सभासदों की नामावली से काट दिए जांय।

(५) मंत्री ने निम्न-लिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दीः—

(१) आनरेब्ल मुंशी गंगाप्रसाद वर्म्मा, लखनऊ (२) पं० यदुनन्दन मिश्र, जुरावनसिंह, दरभंगा (३) बाबू हरबंदनलाल, एडिशनल सबजज, गोरखपुर, (४) बाबू बालकृष्णसहाय, वकील, रांची (५) पण्डित गंगाराम सारस्वत, दण्डपाणि की गली, काशी (६) बाबू सीता राम, चीनीबाजार, काशी।

इस पर सभा ने शोक प्रगट किया।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं :—

पं० कालीचरण दुबे एल० एम० एस०, काशी

हैज़ा

बालकों के पोषणार्थ आवश्यक शिक्षाएं

दूध

ताऊन

मलेरिया

बाबू मथुरादास, सुपरवाइज़र, मिलिटरी वर्क्स, फ़ीरोज़पुर—

सन्धिविषय

अव्ययार्थ

जन्तरी सर्वनाम
पं० चतुर्भुजमिश्र, पो० चरता; जि० हज़ारीबाग
मनोहररामायण
लाला भगवानदीन—काशी
वीरमाता

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबन्धकारिणी-समिति

शनिवार तारीख २७ जून १९१४—सन्ध्या के ६ बजे। स्थान—सभाभवन

(१) गत अधिवेशन (तारीख १६ मई १९१४) का कार्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) पटना के चैतन्य पुस्तकालय का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने पुस्तकालय के लिये सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मांगी थीं।

निश्चय हुआ कि उन्हें प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति अर्द्ध मूल्य पर दी जांय।

(३) ग्वालियर और संयुक्त प्रदेश की हिन्दी हस्त-लिपि परीक्षा के पर्चों के सम्बन्ध में सब-कमेटी की रिपोर्ट उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि सब-कमेटी की सम्मति के अनुसार निम्न लिखित बालकों को पारितोषिक और प्रशंसापत्र दिए जांयः—

ग्वालियर राज्य

मिडिल विभाग

१ ज्वालाप्रसाद, कक्षा २, ए० वी० एम० स्कूल, आगर, जि० शाजापुर ५)

२ घासीराम, मिडिल कक्षा, हिन्दी स्कूल, उज्जैन
३ न्याज़हसन, मिडिल विभाग, जनकगंज स्कूल, लश्कर, ग्वालियर
} प्रशंसा-पत्र

अपर प्राइमरी विभाग

१ राधाकृष्ण, कक्षा ३, पाठशाला रन्नौद, तहसील केलारस, जि० नरवर ३)

२ भमरलाल, कक्षा ३, पाठशाला रन्नौद, तहसील केलारस, जि० नरवर
३ भगवतीप्रसाद, कक्षा ४, पाठशाला नूराबाद, परगना नूराबाद, जि० तवरघार
} प्रशंसा पत्र

लोअर प्राइमरी विभाग

१ रामस्वरूप, कक्षा ७ अ, पाठशाला सबलगढ़, जि० तवरघार २)

२ माधवसिंह, कक्षा ७ अ०, सरदार स्कूल, ग्वालियर
३ रघुबर, कक्षा ६, पाठशाला सबल गढ़, ज़ि० तवरघार
} प्रशंसापत्र

संयुक्तप्रदेश

मिडिल विभाग

१ जसोदासिंह, कक्षा ६, मिडिल पाली स्कूल, अलमोड़ा ५)

२ द्वारिका प्रसाद, कक्षा ६, राजापुर स्कूल, तहसील मऊ, जि० बांदा ४)

३ नारायणदत्त, कक्षा ६, टाउनस्कूल, अलमोड़ा ३)

४ रामश्री, कक्षा ६, बिल्हौर स्कूल, बिल्हौर, जि० कानपुर
५ गजाधर, कक्षा ५, मिडिल भीमताल स्कूल, नैनीताल
६ सुलतानसिंह, तहसीली स्कूल, कक्षा ६, सिकन्दराराव, जि० अलीगढ़
७ राधाकृष्ण, कक्षा ३, कटावां, जि० सुलतांपुर
८ शिवरत्न, कक्षा ५, पाठशाला इटौंजा, तहसील मलिहाबाद, लखनऊ
९ महाबीरसिंह, कक्षा ५, टाउनस्कूल, सुलतांपुर
} प्रशंसापत्र

अपर प्राइमरी विभाग

१ कलमसिंह, कक्षा ४, अपरप्राइमरी स्कूल, घीड़ी, पट्टीबनेलस्यूं, गढ़वाल ५)

२ देवीदयाल, कक्षा ४, राजापुर स्कूल, तहसील मऊ, जि० बांदा ३)

३ बलिराम, कक्षा ३, अपरप्राइमरी स्कूल, बड़ेत, जि० गढ़वाल २)

४ रामलखन, कक्षा ४, देवरिया स्कूल, देवरिया, जि० गोरखपुर

५ शिवनन्दन, कक्षा ४, तिलौली स्कूल, देवरिया, जि० गोरखपुर

६ दुर्गादत्त अल्मोड़ा, कक्षा ४, अपर स्कूल नौबाड़ा, तहसील रानीखेत, जि० अलमोड़ा

७ माताप्रसादसिंह, कक्षा ४, पखरौली स्कूल, सुलतांपुर

८ प्यारेलाल, कक्षा ३, तहसीली स्कूल, हाथरस, जि० अलीगढ़

(४ से ८ तक — प्रशंसापत्र)

लोअर प्राइमरी विभाग।

१—जीवानन्द, कक्षा २, घीड़ी स्कूल, पट्टीबनेलस्यूं, गढ़वाल ४)

२—भवानीसिंह विष्ट, कक्षा २, जैनी पाठशाला, जि० अलमोड़ा २)

३—उच्छवसिंह, कक्षा २, पाठशाला देवलचौड़, तहसील हलद्वानी, जि० नैनीताल २)

४—कैलासराम, कक्षा २, लोअर प्राइमरी, स्कूल, वैरिया, जि० बलिया

५—सूर्यराम, कक्षा २, लोअर प्राइमरी स्कूल, वैरिया, जि० बलिया

६—अलीमुहम्मद मियां, कक्षा २, लोअर प्राइमरी स्कूल, वैरिया, जि० बलिया

(४ से ६ तक — प्रशंसा पत्र)

७—फतहचन्द, कक्षा २, पाठशाला जेवर, जि० बुलन्दशहर

(४) साहित्य सम्मेलन कार्यालय, प्रयाग के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने आगामी सम्मेलन के सभापति के चुनाव के लिये ५ सज्जनों की नामावली मांगी थी।

निश्चय हुआ कि इस चुनाव के लिये सभा निम्नलिखित सज्जनों को उपयुक्त समझती है अर्थात् पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०, पण्डित बालकृष्णभट्ट, पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा और साहित्याचार्य्य पाण्डेय रामावतार शर्म्मा एम० ए०।

( ) हरदोई के सरस्वती क्लब के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सूचना दी थी कि क्लब ने यह निश्चय किया है कि सभा उसे अपनी अध्यक्षता में चलावे और वही इसकी कुल सम्पत्ति की मालिक रहे।

निश्चय हुआ कि सरस्वती क्लब के पूरे वृत्तान्त के सहित यह पत्र सभा के आगामी अधिवेशन में विचारार्थ उपस्थित किया जाय जिससे इस क्लब की स्थिति भलीभांति विदित हो जाय।

(६) कोश कार्यालय के कार्यकर्ताओं का यह प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया कि उनके लिये प्रिविलेज छुट्टी वर्ष में एक मास के स्थान पर केवल पन्द्रह दिन की कर दी जाय पर इसका उन्हें पूरा वेतन मिले और एक सप्ताह से कम के लिये यह छुट्टी न ली जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(७) निश्चय हुआ कि गत अधिवेशन में आगामी वार्षिक चुनाव के लिये जो सूची बनाई गई है उसमें निम्नलिखित सज्जनों के नाम और बढ़ा दिये जायँ अर्थात् सभापति और उपसभापति की नामावली में बाबू काशीप्रसाद जायसवाल

बी० ए०, प्रबन्धकारिणी समिति के नगरस्थ सभ्यों में बाबू गंगाप्रसाद गुप्त और इस समिति के राजपूताना निवासी सभ्यों में बाबू रामस्वरूप जैन और कुंअर जोधसिंह मेहता।

(८) मंत्री ने ८६ सभासदों की नामावली उपस्थित की जिनके यहाँ दो वर्ष से अधिक का चन्दा बाकी पड़ गया था।

निश्चय हुआ कि इन महाशयों को लिखा जाय कि यदि वे ३१ जूलाई १९१४ तक अपना कुल चन्दा आगामी वर्ष के चन्दे के सहित न भेज देंगे तो उनका नाम दुःख के साथ "सूची ख" में लिखा जायगा।

(९) राधाकृष्णदास मेडल के लिये "मानव जीवन पर नाटकों का प्रभाव और हिन्दी में उनकी अवस्था" पर आए हुए लेखों के सम्बन्ध में सब कमेटी की सम्मति उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि यह मेडल पण्डित सांवलजी नागर को दिया जाय।

(१०) डाक्टर छन्नूलाल मेमोरियल मेडल के लिये "शारीरिक सुधार" पर आए हुए लेखों के सम्बन्ध में सबकमेटी की सम्मति उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि इन लेखों में से कोई भी मेडल के योग्य नहीं है।

(११) पण्डित सांवल जी नागर का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि हिन्दी विश्वकोश में सभा के शब्दसागर से बहुत से शब्द और उनके अर्थ ज्यों के त्यों उद्धृत कर लिये गए हैं। अतः इस विषय में सभा को उचित कार्रवाई करनी चाहिए।

निश्चय हुआ कि हिन्दी विश्वकोश के प्रकाशक को लिखा जाय कि उन्होंने हिन्दी शब्दसागर के शब्दों और अर्थों को इस प्रकार उद्धृत करने में बड़ा अनुचित किया है और यदि वे आगे से इसे बन्द न कर देंगे तो सभा को अपने स्वत्व की रक्षा के लिये उचित उपाय करना पड़ेगा।

(१२) निश्चय हुआ कि हिन्दी पुस्तकों की खोज की सन् १९०९—११ की रिपोर्ट का मूल्य ४) रु० नियत किया जाय।

(१३) निश्चय हुआ कि निम्नलिखित पुस्तकों का दूसरा संस्करण सभा द्वारा यथाक्रम प्रकाशित किया जाय अर्थात् (क) सुघड़ दर्जिन (ख) चन्द्रावती (ग) धम्मपद का संशोधित संस्करण (घ) हरिश्चन्द्र (च) नेपाल के इतिहास का संशोधित संस्करण (छ) सुजानचरित्र, यदि पुस्तकों की खोज में उसकी कोई उत्तम प्रति मिली हो (ज) छत्रप्रकाश, नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला में निकाला जाय (झ) कालबोध का संशोधित संस्करण।

(१४) पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० का २१ जून का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि बाबू चतुर्भुजसहाय वर्म्मा को सभा से जितनी छुट्टियां मिल सकती थीं उन सब छुट्टियों से लाभ उठा कर उन्होंने पहिले बिना कोई सूचना दिए हुए हिन्दी पुस्तकों के खोज के कार्य से एकाएक अपने पद को त्याग कर दिया।

निश्चय हुआ कि बाबू चतुर्भुजसहाय का यह आचरण सर्वथा अनुचित है। उनका इस्तीफ़ा स्वीकार किया जाय और उनके स्थान पर दूसरा उपयुक्त मनुष्य नियत कर लिया जाय।

(१५) मंत्री के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि सभा के क्लार्क पण्डित काशीप्रसाद तिवारी बहुधा अनुपस्थित रहा करते हैं और इधर २ मास से वे अनुपस्थित हैं जिससे सभा के कार्यों में बहुत हानि होती है। अतः वे अपने पद से

च्युत किए जायँ और उनके स्थान पर बाबू पशुपतिनाथ नियुक्त किए जायँ।

(१६) बालाघाट के पंडा बैजनाथ जी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि यदि सभा मिस्टर जी० स्पिलर की ट्रेनिंग आफ़ दी चाइल्ड नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करे तो वे इसके लिये सभा को ६०) रु० की सहायता देंगे।

निश्चय हुआ कि इसके लिये श्रीयुत पंडा बैजनाथ जी को धन्यवाद दिया जाय और इस पुस्तक के आधार पर हिन्दी भाषा में एक पुस्तक लिखवाई जाय। इसके लिये ३०) रु० का पुरस्कार स्वीकार किया जाय।

(१७) निश्चय हुआ कि जो लोग मनोरंजन पुस्तक-माला की सब पुस्तकों को न लेकर केवल इस की फुटकर पुस्तकें लिया चाहें उनसे प्रत्येक पुस्तक का मूल्य १) रु० लिया जाय।

(१८) बाबू शिवकुमार सिंह के ये प्रस्ताव उपस्थित किए गए कि (क) सभा की वार्षिक रिपोर्ट में उत्तम पुस्तकों का जो उल्लेख रहता है उसके लिए एक सबकमेटी बना दी जाय और पुस्तकों के सम्बन्ध में उसी कमेटी की सम्मति रिपोर्ट में प्रकाशित की जाय (ख) सभा के वार्षिक विवरण में सम्मिलित करने के लिये वकील और मुख्तार मेम्बरों तथा हिन्दीहितैषिणी सभाओं से नागरी प्रचार के विषय में रिपोर्ट मांगी जाय (ग) नागरी में काम करनेवाले आनरेरी मेजिस्ट्रेटों का उल्लेख भी सभा की रिपोर्ट में रहे (घ) सभा की प्रकाशित पुस्तकों का विज्ञापन नियमित रूप से नागरी प्रचारिणी पत्रिका तथा अन्य हिन्दी समाचार पत्रों में प्रकाशित किया जाय।

निश्चय हुआ कि (क) इसके लिये एक जुदी सबकमेटी के नियत किए जाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती (ख) यह स्वीकार किया जाय (ग) सभा की सम्मति में इसकी आवश्यकता नहीं है (घ) पुस्तकों का विज्ञापन नागरीप्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित किया जाय और वह हिन्दी शब्दसागर के टाइटिलपृष्ठ पर भी छपा करे।

(१९) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

गौरीशंकरप्रसाद

मंत्री।
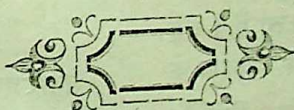
मनोरंजन पुस्तकमाला।

आदर्श जीवन।

(लेखक पं० रामचन्द्र शुक्ल।)

इस पुस्तक का उद्देश्य युवा पुरुषों के चित्त में अविचल रूप से उत्तम संस्कार जमाना है। यह अँगरेज़ी की प्रसिद्ध पुस्तक Plain Living and High Thinking के आधार पर लिखी गई है। इसमें वे साधन बहुत अच्छी तरह बतलाए गए हैं जिनके द्वारा मनुष्य परिवार और समाज अर्थात् घर के भीतर और बाहर सुख और शांति के साथ जीवन निर्वाह कर सकता है। मूल पुस्तक में जहाँ जहाँ दृष्टान्तरूप से यूरप के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषों से सम्बन्ध रखनेवाली बातें आई हैं वहाँ यथासम्भव इसमें भारतीय इतिहास से ऐसे ऐसे चमत्कारपूर्ण दृष्टान्त दिए गए हैं जिनका प्रभाव देशवासियों के हृदय पर स्वभावतः बहुत अधिक पड़ेगा। इस प्रकार की पुस्तक की हिन्दी में बड़ी आवश्यकता थी। लोग ऐसी पुस्तक ढूँढ़ते थे और नहीं पाते थे। आत्मसंस्कार संबंधी यह पुस्तक हिन्दी में अपूर्व निकली। आत्मबल, आचरण, स्वाध्याय, स्वास्थ्यरक्षा आदि विषयों पर ६ प्रकरण बहुत ही चलती, चटकीली और ज़ोरदार भाषा में लिखे गए हैं जिन्हें पढ़ने से युवा पुरुषों के अन्तःकरण में वे शुभ संस्कार स्थापित हो सकते हैं जिनके बल से मनुष्य कठिनाइयों को कुछ न समझता हुआ प्रसन्नचित्त उन्नति की ओर बराबर बढ़ सकता है। यह पुस्तक प्रत्येक घर में विशेष कर प्रत्येक युवक के हाथ में होनी चाहिए। मूल्य फुटकर १); पुस्तकमाला के ग्राहकों से ॥।); डाकव्यय अलग।

आत्मोद्धार।

(लेखक बा० रामचन्द्र वर्म्मा।)

पुस्तकमाला की दूसरी पुस्तक है आत्मोद्धार। यह अमेरिका के प्रसिद्ध हबशी नेता मि० बुकर टी० वाशिंगटन का जीवनचरित है। वाशिंगटन ने बहुत ही दरिद्र घर में जन्म लेकर जितनी मानसिक और नैतिक उन्नति की है उसे देखकर बड़े बड़े यूरोपियन और अमेरिकन दंग रह गए हैं। मि० वाशिंगटन ने अमेरिका के टस्कजी नगर में ३३ वर्ष पहले एक छोटी सी झोपड़ी में जो विद्यालय स्थापित किया था, वह इस समय आदर्श और अच्छे अच्छे विश्वविद्यालयों से बढ़कर समझा जाता है। उनकी योग्यता और उनके विचारों की प्रशंसा अमेरिकन संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति तथा और बड़े बड़े प्रसिद्ध पुरुषों ने की है। इस पुस्तक के पढ़ने से यह बात मालूम हो जाती है कि एक साधारण मनुष्य भी अपने नैतिक बल और सदाचरण की सहायता से कहाँ तक उन्नति कर सकता है। पुस्तक आद्योपांत बहुत ही रोचक और शिक्षाप्रद है। इसमें अनेक ऐसी घटनाओं और सिद्धान्तों का वर्णन है जिनसे पाठकों को बहुत बड़ी शिक्षा मिलेगी। इसके अतिरिक्त इसके पढ़ने से अमेरिका की गत पचास वर्षों की तथा वर्त्तमान स्थिति का भी बहुत कुछ परिचय मिलता है। तात्पर्य्य यह कि पुस्तक अनेक ज्ञातव्य और मननीय विषयों से परिपूर्ण है। प्रत्येक विद्याप्रेमी को इसकी एक प्रति अवश्य अपने पास रखनी चाहिए। मूल्य १) पुस्तकमाला के ग्राहकों से ॥।) डाकव्यय अलग।

गुरु गोविंदसिंह।

(लेखक बा० बेणी प्रसाद।)

मनोरंजन पुस्तकमाला की तीसरी पुस्तक का नाम "गुरु गोविंदसिंह" है। ख़ालसा पंथ के अंतिम और दसवें गुरु गोविंदसिंह ने प्रसिद्ध कट्टर मुसलमान शासक औरंगजेब के विरुद्ध एक ऐसी बलवती धार्म्मिक शक्ति खड़ी कर दी थी जिसने आगे चलकर एक साम्राज्य की स्थापना की थी। उन्हीं गुरु गोविंदसिंह की यह सविस्तर जीवनी है। इस पुस्तक में यह बात भली भाँति

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १९ } अप्रैल, १९१५. { संख्या १०

मनुष्य और भूगोल।

आस्ट्रेलिया में विज्ञान की वृद्धि और प्रचार के लिए जो ब्रिटिश एसोसिएशन है, अभी हाल में उसके भैगोलिक विभाग में सर चार्ल्स पीलूकस ने सभापति की हैसियत से एक वक्तृता दी थी। उसमें वक्ता महाशय ने यह दिखलाया था कि मनुष्य ने अब तक भूगोल में कितना परिवर्त्तन किया है और अभी भविष्य में और कितना अधिक परिवर्त्तन होने की सम्भावना है। यह भाषण नए और अच्छे विचारों से पूर्ण और बहुत रोचक हुआ था, अतः उसका सारांश यहाँ दिया जाता है।

लूकस महाशय ने आरम्भ में कहा कि आज कल लोग पृथिवी के एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक के सभी भागों से भली भाँति परिचित हैं। कुछ भाग ऐसे भी हैं जिनका थोड़ा बहुत पता लगाना बाकी है, पर वहाँ काम बराबर चल रहा है। रायल जाग्राफिकल सोसायटी के भूतपूर्व सभापति सर क्लीमेंट मारकूहम ने एक बार कहा था—"पृथिवी का मनुष्य के साथ जो सम्बन्ध है उसे देखते हुए पृथिवी का वर्णन ही भूगोल है; उससे पता लगता है कि मनुष्य के द्वारा पृथिवी में बहुत बड़े बड़े परिवर्त्तन हो रहे हैं। यह परिवर्त्तन केवल सीमाओं आदि के ही नहीं बल्कि उसके स्वरूप और ऋतु आदि के भी हैं। भविष्य के भूगोल में केवल उन्हीं परिवर्त्तनों का लेखा रह जायगा जो मनुष्य ने लगातार कई पीढ़ियों में किए हैं।"

अमेरिकन लेखक मि० जी० पी० मार्श ने 'Man and Nature' (मनुष्य और प्रकृति) नामक एक पुस्तक सन् १८६४ में और 'The Earth as modified by Human Action' (मनुष्य द्वारा संस्कृत पृथिवी) नामक पुस्तक सन् १८७४ में प्रकाशित की थी। इन पुस्तकों में अधिकांश भैगोलिक और ऋतु संबंधी उन्हीं परिवर्त्तनों का वर्णन था जो मनुष्य की सर्वनाशक प्रवृत्ति के कारण हुए हैं। उन्होंने

लिखा था—"प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक पशु भैागोलिक परिवर्त्तनों का हेतु है; मनुष्य (पृथिवी को) नष्ट करता है ग्रैार वनस्पति, ग्रैार कभी कभी जंगली जानवर उसकी मरम्मत करते हैं।" ग्रैार "यह बात साधारणतः ठीक है कि मनुष्य ने प्रकृति के जिन जिन ग्रंगों पर ग्रधिकार कर लिया है, मानों उन्हें नष्ट ग्रैार भ्रष्ट करने का उसने ठेका सा ले लिया है।" ज्यों ज्यों मनुष्य की सभ्यता बढ़ती जाती है त्यों त्यों वह बराबर नाश ही करता जाता है।

पहले जंगलों को ही लीजिए। मनुष्य ने केवल ग्रपने हाथों से ही जंगल नहीं काटे हैं बल्कि ग्रपने पालतू जानवरों से भी उनका विनाश कराया है। जंगली जानवर, भेड़, बकरियाँ ग्रैार दूसरे चैापाए वृक्षों की नई नई कोंपलें खाकर जितनी हानि करते हैं, मनुष्य द्वारा की हुई हानि उससे कहीं बढ़ कर है। मनुष्य बहुत दिनों से यह बात भूल सा गया है कि "यह पृथिवी उसे केवल फल ग्रादि खाने के लिए दी गई है, व्यर्थ नष्ट करने के लिए नहीं।"

जंगल कटने से बरसात ग्रैार सोतों का पानी बह कर जितनी हानि करता है उसका बहुत ग्रच्छा प्रमाण दक्षिणी फ्रान्स ग्रैार फ्रान्सीसी ग्राल्प्स पर्वत में मिलता है। वृक्ष कटने ग्रैार जंगलों में बकरियों के चरने से—क्योंकि बकरियाँ जमीन खोद डालती हैं ग्रैार जड़ों के ऊपर की मिट्टी हटा देती हैं,—सारी भूमि शस्य-हीन हो गई है। फल यह होता है कि बरसाती पानी वहाँ से बहकर तराइयों में बाढ़ लाता ग्रैार भूमि की बहुत हानि करता है। पहाड़ के ग्रास पास का प्रान्त उजाड़ हो गया है ग्रैार तराइयाँ दलदल से भर गई हैं। प्रायः तीस वर्ष हुए, फ्रेंच भैागोलिक रेक्लुस ने लिखा था—"लोग जब जंगलों को नष्ट करते हैं तो उस भूमि को भी नष्ट कर देते हैं जिस पर वह जंगल होते हैं।" ऐतिहासिक दृष्टि से, फ्रेंच ग्राल्प्स के सोतों के उपद्रव से एक ग्रैार बात का पता लगता है। वह सीरिया, यूनान, एशिया-माइनर, ग्रफ्रिका ग्रैार स्पेन के उजाड़ ग्रैार जनहीन होने का भेद बतलाता है। जहाँ जंगल नष्ट हुए वहाँ ग्राबादी भी नहीं रह जाती। विजेता की तलवार की तरह लकड़हारों की कुदाल ने भी ग्राबादी या तो नष्ट कर दी है ग्रैार या स्थान से हटा दी है।

प्रश्न हो सकता है कि मनुष्य ने ग्रब तक कितने परिवर्त्तन किए हैं ग्रैार पृथिवी के भिन्न भिन्न भागों में, प्राकृतिक सीमाग्रों, विभागों ग्रैार ऋतु ग्रादि में ग्रभी वह ग्रैार कितना ग्रधिक परिवर्त्तन करेगा? ग्रैार ऐसी दशा में जब कि मनुष्य निसर्ग के वास्तविक स्वरूप में किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं कर रहा है, कहाँ तक तरह देता जायगा? इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विज्ञान ने कुछ तो पुराने तरीकों से, बहुत ग्रधिक मजबूत कलों द्वारा ग्रैार कुछ नए तरीकों से निसर्ग में भी बहुत कुछ परिवर्त्तन किया है। ग्रैार ज्यों ही किसी नवीन शक्ति का विकाश होता है त्योंही पृथिवी ग्रैार मनुष्यों में कुछ न कुछ परिवर्त्तन हो जाता है। कोयले ग्रैार भाप के कारण, ग्रैार ग्रब ग्राजकल जल ग्रैार तेल की नई शक्ति के कारण बहुत कुछ उलट फेर हो गया है। जिन देशों में कोयला नहीं होता वहाँ पानी ग्रथवा तेल से ही काम निकाला जाता है। जब से इंजिनों में तेल जलने लगा तब से यात्राएँ बराबर बढ़ती जाती हैं ग्रैार कोयला लादने के स्थान व्यर्थ होते जाते हैं। यदि सच पूछिए तो पृथिवी स्वयं ही ग्रपना तल परिवर्त्तन करने के लिए मनुष्य को साधन प्रदान करती है ग्रैार मनुष्य ग्रपनी बुद्धि की सहायता से उन साधनों का उपयोग करता है।

पृथिवी के तल पर स्थल ग्रैार जल है। मनुष्य ने ग्रब तक कितने जल को स्थल ग्रैार कितने स्थल को जल बनाया है? ग्रैार जल तथा स्थल के स्वरूप में बिना किसी प्रकार का परिवर्त्तन किए इन भैागोलिक विभागों को कहाँ तक, ग्रपने काम के लिए व्यर्थ किया ग्रथवा कम से कम उनका ग्रर्थ बदल दिया है? एक लेखक कहता है—"रोमन लोग संसार के बहुत से भागों पर ग्रधिकार करके भी सन्तुष्ट न हुए ग्रैार उन्होंने ग्रपने देश की बहुत सी

झीलों ग्रैार दलदलों को नष्ट करके नई भूमि बना ली।" ग्राज कल भी दो एक ऐसी जातियों के उदाहरण मिलेंगे जिन्होंने—संसार के बहुत से देशों के ग्रधिकारी होने पर भी—जल के बहुत से भाग को स्थल बना लिया है। समुद्र के जल से तो मनुष्य ने बहुत ही थोड़ा स्थल बनाया है पर नदियों ग्रैार झीलों ग्रादि से बहुत ग्रधिक भाग लिया है। पर वह भाग समस्त जगत् का जल ग्रैार स्थल देखते हुए बहुत ही थोड़ा है। दो एक छोटे छोटे देशों ने ग्रवश्य ही ग्रपेक्षाकृत ग्रधिक स्थल बनाया है ग्रैार उन्हीं देशों के निवासियों ने संसार के भूगोल ग्रैार इतिहास का भी बहुत बड़ा भाग बनाया है। हालैंड, बेलजियम ग्रैार ग्रेट-ब्रिटेन इसका उदाहरण हैं।

मनुष्य ने स्थल का कितना ग्रंश जलमग्न किया है? यद्यपि यह ग्रंश बहुत ग्रधिक नहीं कहा जा सकता तो भी देशों की छोटाई देखते हुए वह कम नहीं है। इसके ग्रतिरिक्त ग्रप्रत्यक्ष रूप से भी बहुत कुछ काम हुग्रा है। नगरों में रहने की ग्रावश्यकता के कारण नई नई झीलें ग्रैार नदियाँ बनती हैं। ग्रमेरिका के न्यूयार्क नगर में कैटस्किल पर्वत से जिन बड़े बड़े टाँकों ग्रैार नलों से जल लाया जाता है उनके विषय में विलायत के टाइम्स पत्र में एक लेखक ने लिखा है कि वह मान ग्रादि में पनामा नहर से कदाचित् ही कुछ कम हों। मिस्र में एक स्थान पर नील नदी को रोक कर ग्रनन्त जलराशि एकत्र की जाती है। जहाजों के लिए बनी हुई बड़ी बड़ी नहरों को ही लीजिए। एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक स्वेज की नहर सो मील लंबी है ग्रैार वह बराबर गहरी ग्रैार चौड़ी होती जाती है। पनामा की प्रसिद्ध नहर के संबंध में टाइम्स में एक महाशय ने लिखा है कि इतने थोड़े से स्थान में ग्राज तक मनुष्य ने कभी इतनी ग्रधिक भूमि नहीं काटी है। एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक यह नहर केवल पचास मील लंबी है। पर उसे बनाने के लिए चैग्रेस नामक नदी का जल, दो पहाड़ियों के बीच में रोक कर इतनी बड़ी झील तैयार की गई है जो जनेवा झील की तीन चौथाई है।

मि० मार्श ने ग्रपनी पुस्तक में मनुष्य के तत्संबंधी ग्रैार भी बड़े बड़े विचारों का उल्लेख किया है। ग्रफ्रिका के सहारा रेगिस्तान को जल-मग्न करने ग्रैार भूमध्यसागर से जारडन तक एक नहर निकाल कर समुद्र तल से नीचे डेड सी (Dead Sea) के तल को जल-मग्न करने का विचार इसी के ग्रन्तर्गत है। एक शताब्दी में जो विचार शेखचिल्लियों के से जान पड़ते हैं, दूसरी शताब्दी में वही सम्भव मालूम होने लगते हैं ग्रैार तीसरी शताब्दी में वह कार्य्यरूप में भी परिणत हो जाते हैं। ज्यों ज्यों नए विचार निकलते ग्रावेंगे त्यों त्यों मनुष्य ग्रपनी सारी शक्तियाँ उन्हें पूर्ण करने में लगाता जायगा। ग्रब तक जितने काम हुए हैं उन्हें देखते हुए कोई समझदार विज्ञान द्वारा भविष्य में होनेवाले कामों की सीमा निश्चित नहीं कर सकता।

ग्रब इन बातों को छोड़ कर यह देखिए कि जल से स्थल का ग्रैार स्थल से जल का कहाँ तक काम लिया जाता है। स्थल काट कर बनाए हुए जल-मार्ग ने बहुत से स्थानों में स्थल-मार्ग का नाश किया है। कनाडा तथा ग्रैार स्थानों के डमरू-मध्य काट कर बनाई हुई नहरें इस बात का बहुत ग्रच्छा प्रमाण हैं। सूखी जमीनें काट कर जल-मार्ग बनाया जाता है ग्रैार प्रस्तुत जल-मार्ग बढ़ा कर समुद्रों से मिलाए जाते हैं। जहाजी नहर बन जाने के कारण मैनचेस्टर नगर बन्दर बन गया है। (इंगलैंड की) क्लाइड नामक बहुत ही छोटी नदी बढ़ा कर जहाजों के ग्राने जाने योग्य बना दी गई है; यही दशा टाइन की भी हुई है। ग्रैार ग्रब इन्हीं नदियों में सारे संसार के लिए बहुत बड़े बड़े जहाज बनते हैं। (जर्म्मनी ग्रैार हालैंड की) एल्ब ग्रैार रहाइन तथा (ग्रमेरिका की) मिसीसीपी ग्रैार सेन्ट लारेन्स नामक नदियाँ भी इंजीनियरों के हाथों से बहुत कुछ परिवर्त्तित ग्रैार परिवर्द्धित हो चुकी हैं।

उधर स्थल ने भी जल-मार्ग के बहुत बड़े भाग

पर अधिकार कर लिया है। प्राचीन काल में जब सड़कें बहुत कम और रेलें एक दम नहीं थीं, और जहाज बहुत ही छोटे होते थे, यह बात बहुत आवश्यक थी कि जल-मार्ग द्वारा, स्थल से जहाँ तक निकट हो सके, माल लाया जाय। इंगलैंड में छोटी छोटी नदियों के मुहानों पर पहले बहुत से अच्छे अच्छे बन्दर थे; पर आज कल प्रायः वह सभी नष्ट हो गए हैं। समुद्री व्यापार के संबंध में कैन्टरबरी और विन्सेस्टर का अब कोई नाम भी नहीं जानता। पर मि० बैलोक ने अपनी 'The Old Road' नाम की पुस्तक में यह दिखलाया है कि यह दोनों नगर—विशेषतः कैन्टरबरी—नदियों के किनारे, समुद्र तट से निकट और फ्रान्स जाने का मार्ग होने के कारण कितने महत्त्व के स्थान थे। उस समय इंगलैंड में जाने के लिए छः बन्दरों से, कैन्टरबरी में ही माल आता था और वह स्वयं एक बहुत बड़ा बन्दर समझा जाता था। पर आज कल केवल कुछ बड़े बड़े बन्दरों में ही माल आता है और रेल द्वारा देश के अन्तर्भाग में सीधा चला जाता है। प्राचीन काल में बन्दर प्राकृतिक हुआ करते थे और लोग चल कर बंदर तक जाया करते थे; पर आज कल लोग जहाँ अपनी आवश्यकता समझते हैं, वहीं बंदर बना लेते हैं। प्राकृतिक बंदरों तक जाने की उन्हें आवश्यकता नहीं होती।

अब और आगे चलिए। ग्रेटब्रिटेन एक द्वीप है। जब तक कि कोई बहुत बड़ा प्राकृतिक व्यापार न हो तब तक डोवर प्रणाली सदा उसे शेष युरोप से पृथक् रक्खेगी। पर आज कल भी प्रणाली के नीचे सुरंग खोदकर इंगलैंड से फ्रान्स जाने का मार्ग निकालने के विचार में लोग लगे हैं और बहुत से लोग आकाशयानों द्वारा उड़ कर इंगलैंड से फ्रान्स और फ्रान्स से इंगलैंड आते और जाते ही हैं। मान लीजिए कि प्रणाली के नीचे सुरंग बन जाय, आकाश-यात्रा में और भी अधिक उन्नति हो जाय—जो कि बराबर दिन पर दिन होती ही जाती है—तो इन सबका परिणाम क्या होगा? उस दशा में समुद्र का क्या होगा? नकशे पर तो वह जरूर दिखलाया जायगा पर मनुष्य के कामों के लिए भूगोल में बड़ा भारी परिवर्त्तन हो जायगा। समुद्र की कोई रुकावट न रह जायगी, इंगलैंड से फ्रान्स जाने का वह एकमात्र मार्ग न रह जायगा।

मनुष्य बरसों में कोई काम सोचते हैं; कभी कभी सोचने में जीवन बीत जाते हैं; यहाँ तक कि सोचने में ही उन्हें शताब्दियाँ लग जाती हैं। रैकलस का यह कथन बहुत ठीक है—"मनुष्य भविष्य में जितने काम करने में समर्थ होगा उन सब के मुकाबले में उसके अब तक किए हुए काम बहुत ही तुच्छ हैं।" स्त्रियाँ बात बात में "नहीं" कहती हैं, पर अन्त में वह "हाँ" ही कर दिखलाती हैं। इस बात में विज्ञान की उनसे बहुत कुछ समानता है।

स्थल और जल का वर्णन करते हुए मैंने अब तक प्राकृतिक विभागों और सीमाओं पर ही विचार किया है और ये सब भूगोल का एक अंग मात्र हैं। आकाश-यात्रा में इन सब विभागों और सीमाओं की, यहाँ तक कि समुद्र की भी, कुछ परवा नहीं की जाती। अब पृथिवी को लीजिए। दो समुद्रों के बीच डमरूमध्य प्राकृतिक विभाजक होता है। पर जहाजी नहरें उन्हें काट कर समुद्रों को मिला देती हैं। क्रीमिया और रूस के बीच की नहर, बाल्टिक नहर, स्वेज नहर, पनामा नहर आदि इसके उदाहरण हैं। स्थल में प्राकृतिक विभाजक हैं—पहाड़, जंगल, रेगिस्तान और कुछ अंशों में नदियाँ। पहले पहाड़ों को ही लीजिए। मिस सैम्पुल कहती हैं—"पृथिवीतल पर मनुष्य को जितनी रुकावटें मिलती हैं, उनमें बड़े बड़े ऊँचे पहाड़ ही सबसे बढ़ कर हैं।" पर क्या ये बड़े बड़े ऊँचे पहाड़ किसी प्रकार विभाजक कहे जा सकते हैं जब कि आज कल उनके ऊपर और बीच में से होकर रेल गाड़ियाँ रोज सैकड़ों हजारों आदमियों को लेकर आती जाती हैं? अमेरिका में ब्रिटिश कोलम्बिया और कनाडा के एक होने में पहाड़ के कारण कौन सी बाधा पड़ती है?

बाइबिल में कहे अनुसार, पहाड़ खोदने में भले ही दृढ़ निश्चय की आवश्यकता हो, पर अन्य प्राकृतिक विभाग दूर करने में उसकी वैसी आवश्यता नहीं होती। आज कल मध्य अफ्रिका में जैसे घने जंगल हैं, इंगलैंड में भी किसी समय वैसे ही जंगल थे। प्रायः चालीस पचास वर्ष हुए, प्रोफेसर सी० एच० पियर्सन ने अपनी 'Historical Map of England' (इंगलैंड का ऐतिहासिक मानचित्र) नामक पुस्तक में लिखा था कि पूर्वी और पश्चिमी इंगलैंड के बीच के जंगल समुद्रों से भी बढ़ कर रुकावट डालते हैं। राजा एलफ्रेड के समय में मध्य इंगलैंड और कैन्ट के बीच में प्रायः सवा सौ मील लंबा घना जंगल था। प्रोफ़ेसर पियर्सन कहते हैं कि लकड़हारों की कुल्हाड़ी ने ही जंगल काट कर इंगलैंड को एक देश बना दिया है।

क्या रेगिस्तानों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है? अवश्य ही पहाड़ों की तरह वे भी पार किए जा सकते हैं। आस्ट्रेलिया का रेगिस्तान पश्चिमी और दक्षिणी आस्ट्रेलिया के मध्य में प्राकृतिक विभाजक है। उस रेगिस्तान पर से रेल ले जाने का विचार हो रहा है। पर क्या रेल बन जाने पर भी वह पहले की ही तरह प्राकृतिक विभाजक और मनुष्य के लिए बाधक रह जायगा? यदि बसाने के लिए मनुष्य मिलें तो यह स्पष्ट है कि रेल जिन स्थानों से होकर जायगी वे स्थान आबाद हो जायँगे और लोग वहाँ की भूमि सुधार लेंगे। क्या संसार के सारे रेगिस्तान सदा ऐसे ही व्यर्थ बने रहेंगे? मनुष्य उन्हें नष्ट कर रहा है और कुछ दिनों में वही रेगिस्तान परिवर्त्तित होकर मनुष्य के रहने योग्य सुन्दर स्थान बन जायँगे। सूखी खेती करके और जंगल लगा के जमीनें आबाद की जायँगी। अभी हाल में 'The Conquest of the Desert' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। उसमें लेखक डाकृर मैकूलनेड ने दक्षिणी अफ्रिका के कलहरी रेगिस्तान का जिक्र करते हुए कहा है कि रेगिस्तानों को नाश करने के लिए तीन चीजें आवश्यक होती हैं—आबादी, परिवर्तन और जंगल लगाना। उन्होंने यह दिखलाया है कि लगातार वृक्ष काटते रहने से रेगिस्तान कितने बढ़ गए हैं और अब किस प्रकार बदल कर बसने योग्य बनाए जा सकते हैं। परिवर्तन से उनका तात्पर्य सूखी खेती की प्रथा से है जिससे अमेरिका के संयुक्त राज्यों में इतनी सफलता हुई है। इस प्रथा से जमीन की नमी उसी में रक्षित रक्खी जाती है और रेगिस्तानों में, बीज बोने के समय से फसल काटने के समय तक बिना एक बूंद पानी बरसे हुए, बढ़िया गेहूँ की फसल तैयार की जाती है। यदि लोग आकर रेगिस्तानों में बसें, वृक्ष लगावें और खेती बारी करें तो अवश्य ही रेगिस्तानों का नाश हो जायगा।

अच्छा, रेगिस्तानों में सिंचाई का क्या परिणाम होगा? सिंचाई ने पृथिवी का स्वरूप बदल दिया है और ज्यों ज्यों दिन बीतते जायँगे और ज्ञान तथा बुद्धि बढ़ती जायगी, त्यों त्यों उसका स्वरूप और भी बदलता जायगा। मैंने कहीं पढ़ा है कि कलहरी के रेगिस्तान के नीचे जल है; लिबवान रेगिस्तान के संबंध में भी मैंने यही सुना है। सन् १९०२ के 'Geographical Journal' में छपा था कि उस तारीख तक एलजीरियन सहारा (उत्तरी अफ्रिका का रेगिस्तान) में प्राय २२००० वर्ग मील भूमि के नीचे बढ़िया पानी होने का पता लगा है जिसमें कूएँ बना कर काम चलाया जा सकता और कदाचित् चलता भी है। आस्ट्रेलिया में ऐसे कुओं से जो काम हुआ है वह सब लोग जानते हैं। चाहे अब तक खेती बारी के लिए उनसे यथेष्ट जल न मिल सका हो तो भी वहाँ गडरिये अपनी भेड़ बकरियाँ लेकर आनन्द से रह सकते हैं। अन्यथा वह प्रान्त पहले की भाँति ही रेगिस्तान और उजाड़ रह जाता।

इस प्रकार मैंने आप को बतला दिया है कि प्रकृति ने पृथिवी तल पर पहाड़, जंगल, रेगिस्तान और नदियाँ, ये चार बड़ी बड़ी बाधाएँ रक्खी हैं। इन में पहाड़ों को तो मनुष्य हटा नहीं सकता पर

उन्हें पार करने की कठिनता से बचने के लिए वह उनमें सुरंगें बना लेता है। जंगलों को उसने बहुत से अंशों में साफ ही कर दिया है। जंगलों की भाँति रेगिस्तानों का नाश करना भी उसने आरम्भ कर दिया है। रहीं नदियाँ, सो अपने सुभीते के अनुसार वह उन्हें भी हटाता बढ़ाता है और जिस ओर चाहता है, उस ओर उनका रुख बदल देता है।

अब मैं ऋतुओं को लेता हूँ। ऋतुएँ गरम भी होती हैं, ठंढी भी; वह सूखी भी होती हैं और उनमें जल भी बरसता है; वह स्वास्थ्य सुधारती भी हैं और बिगाड़ती भी हैं। वृक्षों का इन बातों से बहुत कुछ संबंध है। जब वृक्ष काट दिए जाते हैं और जमीन खुलती हो जाती है तो उस प्रदेश में या तो गरमी बहुत अधिक बढ़ जाती है और या सरदी। यदि वृक्ष नष्ट कर दिए जाते हैं तो सूखा पड़ने लग जाता है और यदि वृक्ष लगाए जाते हैं तो इनसे नमी रुकती है और पानी बरसता है। वृक्षों के काटने और लगाने का किसी न किसी रूप में उस प्रान्त के स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पड़ता ही है। जमीन जोतने बोने से भी ऋतु में बहुत कुछ सुधार हो जाता है।

जिन स्थानों पर इंजीनियर अपनी कारगुजारी दिखलाते हैं वहाँ चिकित्सकों की भी खूब चल जाती है। डीलेसेन्स ने निश्चय किया था कि स्वेज नहर का केन्द्र इस्माइलिया नामक स्थान में रहे, पर वहाँ मलेरिया बहुत अधिक था; इसलिए सैयद बंदर में उसका केन्द्र ले जाने की आवश्यकता पड़ी। सन् १८८६ में इस्माइलिया में मलेरिया से २३०० आदमी मरे थे। सन् १९०० में भी प्रायः यही संख्या थी। सन् १९०१ में सम्मति देने के लिए सर रोनल्ड रोस बुलाए गए। सन् १९०६ से वहाँ मलेरिया का नाश हो गया और अब उस रोग का नाम भी नहीं रह गया। कई कारणों से विशेषतः मजदूरों के बहुत अधिक मरने से पनामा नहर बनाने के प्रयत्न में लेसेप्स को पूरी सफलता नहीं हुई। कहते हैं मलेरिया और पीतज्वर (Yellow fever) के कारण पचास हजार मजदूरों के प्राण गए। अमेरिकावालों ने जब यह काम आरम्भ किया तो मजदूरों के साथ उन्हें बहुत से डाक्टर भी भेजने पड़े थे। अन्त में डाक्टरों के प्रयत्न से मलेरिया एक दम उठ गया। मनुष्य भूगोल का निर्माता है और भूगोल बनने का प्रभाव ऋतु और स्वास्थ्य आदि पर स्वाभाविक रूप से पड़ता है।

यदि धरती की उपज को लीजिए तो उसमें भी आपको मनुष्य-कृत बहुत बड़ा परिवर्त्तन मिलेगा। बहुत से देशों में नई गोरी जातियाँ जाकर पुरानी जातियों के स्थान पर बस जाती हैं जिससे पुरानी जातियों की वृद्धि रुक जाती है। ये नई जातियाँ अपने साथ अनेक प्रकार के पशु और वनस्पतियाँ आदि ले जाती हैं जिनके कारण उन देशों के स्वरूप में बहुत बड़ा परिवर्त्तन हो जाता है।

आस्ट्रेलिया अब भी पहले की ही भाँति महाद्वीप है। उसके तट, पहाड़ और नदियाँ आदि सब ज्यों की त्यों हैं; पर वहाँ की भूमि का स्वरूप बिलकुल बदल गया है। पहले न तो वहाँ कोई नगर था और न बस्ती थी; सारा देश उजाड़ पड़ा रहता था। उसपर बसनेवाले जीव भी भिन्न और विलक्षण थे। वहाँ की भूमि के नीचे से जो पानी और दूसरे खनिज पदार्थ निकले हैं उनके अस्तित्व का पहले किसी को अनुमान भी न था। आज से एक शताब्दी बाद उसमें और भी भारी परिवर्त्तन हो जायँगे और मैं आस्ट्रेलिया के मानचित्र में अभी और भी बड़े बड़े परिवर्त्तन देखने की इच्छा रखता हूँ।

पचास वर्ष से अधिक हुए, बकल् ने अपनी 'History of Civilisation' (सभ्यता का इतिहास) नामक पुस्तक में लिखा था—'प्राचीन काल में वही देश अधिक समृद्ध और सम्पन्न समझे जाते थे जिनमें प्राकृतिक उपज बहुत अधिक हो; पर आजकल सबसे अधिक समृद्ध और सम्पन्न वही देश होता है जहां के मनुष्य सब से अधिक कर्मशील हों। क्योंकि आजकल लोग प्रकृति की कठिनाइयाँ दूर करने का उपाय जानने लग गए हैं। यदि कोई

नदी जहाजों के आने जाने योग्य न हो अथवा कोई देश दुर्गम हो तो इंजीनियर वह दोष या त्रुटि दूर कर देगा। जहाँ नदियाँ नहीं होतीं वहाँ लोग नहरें बना लेते हैं; यदि प्राकृतिक बन्दर नहीं होते तो कृत्रिम बन्दर बना लिए जाते हैं।"

आस्ट्रेलिया जिस प्रकार आजकल महाद्वीप है उसी प्रकार वह सदा नक्शे पर बना रहेगा। अन्य देशों से वह उतने ही मीलों के अन्तर पर रहेगा जितने अन्तर पर अब है। पर केवल इन बातों से उसका वास्तविक स्वरूप प्रकट नहीं हो सकता। ऐसी दशा में जब कि यात्रा बहुत शीघ्र समाप्त करने के साधन दिन पर दिन बढ़ते जाते हैं, मीलों का अन्तर कहाँ तक विचारणीय रह जायगा? क्या स्विस लोगों की तरह हम लोगों को अन्तर का अनुमान मीलों को छोड़ कर घंटों से न करना चाहिए? यदि समुद्र का विचार छोड़ दिया जाय तो महाद्वीप का क्या अर्थ रह जायगा। समस्त संसार की प्रवृत्ति अब एक होने की ओर है। अन्तर के विचार से मनुष्य के कामों के लिए आस्ट्रेलिया की भौगोलिक स्थिति वैज्ञानिकों के हाथों बहुत कुछ बदल गई है। दिन पर दिन अन्तर घटता जाता है और उपज बढ़ती जाती है। संसार बहुत जल्दी जल्दी और दृढ़ रूप से एक हो रहा है। यही सब बातें हैं जिन्हें भौगोलिकों को ध्यान में रखना और साधारण लोगों को जानना चाहिए। संसार ने प्रकृति के साथ जो कुछ किया है उसे भौगोलिकों ने संग्रह कर रक्खा है। मैं उन्हें यह समझाना चाहता हूँ कि सब कुछ होने पर भी मनुष्य ने प्रकृति में कहाँ तक परिवर्त्तन, और परिवर्द्धन ही नहीं बल्कि उसका पुनर्गठन किया है।

प्रथम प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन।

इस वर्ष ईस्टर की छुट्टियों में गोरखपुर में जिन अनेक महासभाओं और सम्मेलनों के अधिवेशन हुए थे, हिन्दी के सौभाग्यवश "प्रथम प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन" भी उन में से एक था। दो तीन मास पहले से ही गोरखपुर के कुछ उत्साही हिन्दी प्रेमियों ने प्रथम प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन के अधिवेशन का उद्योग आरम्भ किया था और हर्ष का विषय है कि उसमें उन लोगों को आशातीत सफलता हुई। जो लोग अन्य सम्मेलनों और महासभाओं में सम्मिलित होने के लिए गोरखपुर गए थे, उनमें से अधिकांश प्रमुख सज्जनों ने तो उक्त सम्मेलन में पधारने की कृपा की ही थी; इसके अतिरिक्त काशी, प्रयाग आदि साहित्य के केन्द्रों तथा अन्य स्थानों से भी अनेक हिन्दी-सेवी केवल उक्त सम्मेलन में सम्मिलित होने के अभिप्राय से वहाँ गए थे। स्थानीय अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों ने भी सम्मेलन में सम्मिलित हो कर उसके कार्य्यों के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की थी और इन सब बातों के लिए सभी सज्जन हिन्दीप्रेमीमात्र के हार्दिक धन्यवाद के भागी हैं। दर्शकों और सम्मिलित होनेवाले प्रतिष्ठित सज्जनों में से गोरखपुर डिवीजन के कमिश्नर, तमकुही के राजा इन्द्रविक्रमजीतशाही, श्रीमती एनी बेसेन्ट, आनरेबुल मि० सच्चिदानन्दसिंह, आनरेबुल डा० तेजबहादुर सप्रू, लाला ईश्वरशरण आदि विशेष उल्लेख योग्य हैं।

सम्मेलन का अधिवेशन २ अप्रैल की सन्ध्या को आरम्भ हुआ था। इस अधिवेशन के लिए जो शामियाना तना था वह जोर की आँधी के कारण ठहर न सका था, और सम्मेलन खुले स्थान में ही हुआ था। उसमें लगभग दो सहस्र सज्जन उपस्थित थे। आरम्भ में गोरखपुर के रईस, स्वागतकारिणी

सभा के सभापति बा० महावीर प्रसाद अग्रवाल का व्याख्यान हुआ और तदुपरान्त पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने अपनी बनाई हुई स्वागत सम्बन्धी कविता पढ़ी। इस के पश्चात् बा० महावीरप्रसाद अग्रवाल के प्रस्ताव और पं० महादेवप्रसाद मालवीय के अनुमोदन पर कानपुर के श्रीयुक्त राय देवीप्रसाद जी पूर्ण बी० ए० एल एल० बी० ने सभापति का आसन ग्रहण किया और अपना लिखा हुआ सरस तथा भावपूर्ण वक्तव्य पढ़ सुनाया जिसे सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए थे। सभापति की वक्तृता समाप्त होने पर प्रस्ताव उपस्थित होने लगे। पहले प्रस्ताव में वर्त्तमान युरोपीय महायुद्ध में अँगरेजी सरकार के साथ सहानुभूति प्रगट की गई थी और उसके विजयी होने की कामना की गई थी। दूसरे प्रस्ताव में कतिपय हिन्दी प्रेमियों की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया था। ये दोनों प्रस्ताव सभापति द्वारा उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए थे। तीसरे प्रस्ताव में आनरेबुल मि० रायनङ्कर के देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा सम्बधी उस प्रस्ताव से सहमति प्रकट की गई थी जो उन्होंने भारतीय व्यवस्थापक सभा में उपस्थित किया था और भारत तथा संयुक्त प्रान्त की सरकारों से यह प्रार्थना की गई थी कि वे इस प्रस्ताव को स्वीकार करके शीघ्र कार्य्यरूप में परिणत करें। यह प्रस्ताव पं० नन्दकुमार देव शर्म्मा ने उपस्थित किया था और प्रयाग के पं० रमाकान्त मालवीय बी० ए० एल एल० बी० ने उसका अनुमोदन तथा लखीमपुर के पं० सूर्य्यनारायण दीक्षित बी० ए० एल एल० बी ने उसका समर्थन किया था। चौथे प्रस्ताव में, जिसे काशीनिवासी (ना० प्र० सभा के मन्त्री) बा० गौरीशंकर प्रसाद बी० ए० एल एल० बी० ने उपस्थित किया था और गोरखपुर के बा० अभयनन्दन प्रसाद ने जिसका अनुमोदन किया था, संयुक्त प्रदेश की सरकार से प्रार्थना की गई थी कि (क) प्रान्तीय गजट हिन्दी में भी निकाला जाय, (ख) कलकृरी के सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले अदालती फार्म हिन्दी में भी छपें (ग) नोटिस और हुकुमनामे आदि हिन्दी में भी जारी हों और फार्मों के खाने हिन्दी में भी भरे जायँ, (घ) पटवारियों के कुछ खास कागजात हिन्दी में भी हों और हिन्दी पढ़े पटवारी रक्खे जायँ, (च) अदालत की कार्रवाइयाँ जहाँ तक हो सकें हिन्दी में हों और (छ) डिग्री के फार्म हिन्दी में भी हों और फार्मों के खाने हिन्दी में भी भरे जायँ।

पाँचवें प्रस्ताव में शिक्षा-प्रणाली में हिन्दी के स्थान के विषय में विशेष रूप से विचार किया गया था। इसे पं० चंद्रीप्रसाद वकील ने उपस्थित किया और "ज्ञानशक्ति"-सम्पादक पं० शिवकुमार ने इसका अनुमोदन किया था। इस प्रस्ताव के संबन्ध में बा० रुद्रनारायण ने कुछ परिवर्त्तन चाहा था पर वह स्वीकृत नहीं हुआ। छठे प्रस्ताव में हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी को स्थान देने की प्रार्थना की गई थी। सातवें प्रस्ताव में राजा-महाराजों, जमीदारों, सेठ साहूकारों से सब कामकाज नागरी में करने और अपने बालकों को हिन्दी में प्रारम्भिक शिक्षा देने की प्रार्थना की गई थी। इस प्रस्ताव में जातीय और प्रान्तिक कान्फरेंसों से हिन्दी में कार्य करने, देश के शिक्षित युवकों से उपयोगी पुस्तकें लिखने और प्रकाशकों से यथाशक्ति कम मूल्य पर पुस्तकें बेचने की भी प्रार्थना की गई थी। आठवें प्रस्ताव में म्यूनिसिपल बोर्ड और डिस्ट्रिक् बोर्डों की रसीदें रखने आदि सब फार्म हिन्दी में भी छापने की प्रार्थना की गई। नवें प्रस्ताव में नोटों, सिक्कों और स्टाम्पों पर नागरी को स्थान देने की प्रार्थना की गई। दसवें प्रस्ताव के अनुसार नियमावली बनाने और साल भर तक कार्य्य करने के लिए एक समिति बनाई गई थी।

इसके पश्चात् बाहर से आए हुए पत्र पढ़े गए और सभापति ने प० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी का भेजा हिन्दी में शिक्षा देने के महत्व पर एक लेख पढ़ा। पं० मङ्गलप्रसाद द्विवेदी ने सभापति को धन्यवाद दिया। सभापति ने कृतज्ञता प्रकाश करते हुए कहा कि "आप लोगों ने जो मेरी प्रशंसा की है उसका मैं अधिकारी नहीं हूँ। यहाँ हिन्दी के

प्रचार स्थायी हो गया तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। निस्सन्देह आपका प्रेम ही हिन्दी-प्रचार के कार्य्य में जीवन डाल देगा। इस कान्फरेंस का अधिवेशन प्रति वर्ष प्रान्तीय कान्फरेंस के साथ होना चाहिए" सम्राट् की जयजयकार होकर कान्फरेंस आनन्द-पूर्वक समाप्त हुई।

—:o:—

श्रीयुक्त पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० की स्वागत सम्बन्धिनी वह कविता जो उन्होंने गोरखपुर के प्रथम प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन में पढ़ी थी,—

स्वागत।

स्वागत कवि कोविद सज्जनगण
सकल नागरी प्यारे।
करने को कृतार्थ हम सब को
गोरखपुर पग धारे॥ १॥
दूर दूर से कष्ट उठा कर
हिन्दी को अपनाने।
दुख दुर्गति से उसे बचाने
उसको अमर बनाने॥ २॥
नौका डूब रही पयोध में
उसमें हाथ लगाने।
गिरि मातृभाषा को ले
फिर सिंहासन बैठाने॥ ३॥
महाराष्ट्र मदरास बम्बई
हिन्दी को फैलाने।
हिन्दी हिन्द देश की भाषा
यह करके दिखलाने॥ ४॥
आप हैं ये अतिथि हमारे
हैं धन भाग हमारे।
गोरखनगर-नागरी-सेवी
सेवक सभी तुम्हारे॥ ५॥
मोहनमदन चरण-रज-परिमल
फिर फिर शीस चढ़ावें।
सुभग श्यामसुन्दर पुरुषोत्तम
बारम्बार मनावें॥ ६॥
विद्या बल प्रताप के दाता
श्रीगणेश गुण गाके।
क्यों न पूर्ण हों अभिलाषा ये
"पूर्ण" सभापति पाके॥ ७॥
जिसमें हुए सूर तुलसी से
कवि कबीर से ज्ञानी।
हुए रसिक मतिराम बिहारी
भूषण से अभिमानी॥ ८॥
शिवप्रसाद से हिन्द सितारे
तम थे दूर हटाए।
श्री हरिचन्द सुकवि से सुन्दर
भारतेन्दु नभ छाए॥ ९॥
उसी नागरी की सेवा की
हुई आज तैयारी।
सज्जन क्षमा करेंगे हमको
हुई धृष्टता भारी॥ १०॥
समझ कृपा हे तात आपकी
हम यह भार उठाए।
गुरुवर के उपयुक्त आप भी
सभी हृदय अपनाए॥ ११॥
ऐसे ही आना इस नगरी
फिर यों ही अपनाना।
हम गँवार गोरखपुरियों को
भ्रातृ भूल मत जाना॥ १२॥

काशी नागरीप्रचारिणी सभा के मन्त्री श्रीयुक्त बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए० एल एल० बी० ने गोरखपुर के प्रथम प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन में अदालतों में नागरी प्रचार संबन्धी प्रस्ताव उपस्थित करते समय कहा था,—

जिस प्रस्ताव के उपस्थित करने का भार मुझे सौंपा गया है उसके पढ़ने के पूर्व उससे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातों को आप लोगों के सम्मुख निवेदन करना चाहता हूँ। अदालतों में हिन्दी के प्रवेश न होने अथवा उसका कम प्रचार होने के दोषी तो वकील और मुख्तार ही विशेषकर हैं, तथापि यदि मुअक्किल भी इस पर उद्यत हों तो हिन्दी में कार्य्य

करना वकीलों और मुख्तारों को आवश्यक पड़ जायगा। यदि मुअक्किल इस बात को ठान ले कि मैं हिन्दी ही जानता हूँ और मेरे पत्रादिक वैसे ही अक्षरों में लिखे जायँ और अदालतों में उपस्थित किये जायँ जिनको मैं पढ़ सकूँ तो वकीलों और मुख्तारों को झख मार कर वैसा करना ही पड़ेगा। यह रोटी का मामला है, इसमें कोई नहीं कह सकेगा कि मैं उस अक्षर में तुम्हारे पत्र नहीं लिखूँगा जिसको तुम जानते हो। आप लोग बाबू शिवप्रसाद गुप्त से भली भाँति परिचित होंगे और यह भी आप लोगों से छिपा न होगा कि वे कितने बड़े हिन्दी के प्रेमी और देशभक्त हैं। कुछ दिन हुए उन्होंने अपने यहाँ यह आज्ञा दी कि मेरी नालिशें और अन्य कार्य्य नागरी अक्षरों में ही हुआ करें। उनके कार्य्यकर्ताओं ने इसमें कुछ आपत्तियाँ खड़ी कीं और कहा कि हमारे यहाँ के कतिपय वकील जो मुसलमान और कायस्थ हैं वे हिन्दी में अच्छी तरह कार्य्य नहीं कर सकते। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि यदि वे ऐसा करना स्वीकार न करें तो उनके स्थान पर ऐसे वकीलों से काम लिया जाय जो हिन्दी में काम कर सकते हैं। इस पर विवश हो कर उनके कार्य्यकर्ताओं को हिन्दी में काम करना पड़ा और उनके वकील भी हिन्दी में कार्य्य करने लगे। यदि इस प्रकार कोई कमर बाँध कर खड़ा हो जाय तो संसार में कोई भी ऐसा कार्य्य नहीं है जिसमें सफलता प्राप्त न हो। हाँ, सभी मुअक्किल ऐसे नहीं हो सकते और न सब को इतनी सामर्थ्य हो सकती है, इसलिए हम लोग जो कि एक प्रकार से अदालतों के पुजारी अथवा पंडे हैं, इसके लिए पूर्ण रीति से दोष के भागी हैं। हमारे सभापति महाशय ने अपनी वक्तृता में कहा है कि जो वकील हिन्दी में कार्य्य नहीं करते हैं उनको हिन्दी का विरोधी नहीं कहना चाहिए। परन्तु मैं नम्रतापूर्वक यह निवेदन करूँगा कि मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। यदि वे विरोध नहीं करते हैं तो उदासीन अवश्य हैं और इस अंश में विरोधी अवश्य कहे जा सकते हैं। मैंने जहाँ तक इस संबन्ध में विचार तथा कार्य्य किया उससे यह प्रतीत हुआ कि जो वकील मुख्तार पहले के हैं और जिनके पास कार्य्य अधिक है उनसे यह बात कदापि नहीं हो सकती और न ऐसा होना सम्भव है कि वे एकदम अपने यहाँ की कार्य्यप्रणाली को बदल दें; परन्तु तो भी मुझ को हर्ष के साथ कहने का अवसर मिला है कि लखनऊ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में हमारे सभापति महाशय ने जो कानपुर के बहुत बड़े वकील हैं और जिनके यहाँ कार्य्य बराबर पहले की भाँति उर्दू में होता आया है उन्होंने इस बात का प्रण और दृढ़ प्रतिज्ञा की कि वे हिन्दी में कार्य्य किया करेंगे। उसके पश्चात् की जो सूची कानपुर से आई है उससे मालूम होता है कि उनके यहाँ भी तीन मास में हिन्दी में कुछ कार्य्य हुआ। परन्तु जितने कागज उनके द्वारा दाखिल हुए उनकी संख्या सन्तोषजनक नहीं है। इस प्रकार भी धीरे धीरे आरंभ करने से आगे चल कर संख्या की वृद्धि हो सकती है और मुझे पूरा विश्वास है कि वे दिनोंदिन इस ओर अपना ध्यान अधिक बढ़ाते जायँगे। परन्तु मुझे अपने नवयुवक वकीलों से इस संबन्ध में बहुत कुछ कहना है।

वे अपने कार्य्य को भली भाँति नागरी अक्षरों में आरम्भ कर सकते हैं और जैसे जैसे उनके यहाँ कार्य्य अधिक होता जायगा वैसे वैसे हिन्दी का स्थान पुष्ट होता जायगा। यदि उनको विश्वास है कि हिन्दी द्वारा देश का उद्धार हो सकता है, यदि वे इस बात को मानते हैं कि हिन्दी में कार्य्य करने से हमारे देशवासियों का उपकार है, यदि उनको इस बात के समझाने की आवश्यकता नहीं है कि अदालतों में हिन्दी का प्रचार होने से जनसमूह में शिक्षा का प्रचार अवश्य होगा और यदि उनको इस बात की लगन है तो उन्हें कमर बाँध कर कठिनाइयों को काटते हुए अवश्य कार्य्य करना चाहिए। जैसे सावन भादों की बढ़ी हुई नदी में धारा के साथ कोई तैर कर जाना चाहे तो उसको कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ेगा, बिना हाथ पैर फेंके ही वह धारा

के साथ बहता चला जायगा । परन्तु यदि उसका अभीष्ट उस पार जाने का है तो उसे बहुत परिश्रम करके तैरना होगा, गोता खाना होगा, उसके नाक-कान में पानी भर आवेगा, डुब्बियाँ लगानी पड़ेंगी और कदाचित् जल में डूब भी जाना पड़ेगा । ऐसी ही अवस्था संसार के कुल कार्य्यों की है । मैंने कुछ नवयुवक वकीलों से इस संबन्ध में कार्य्य करने की प्रार्थना की और कुछ अंशों में सफलता भी हुई । कई कार्य्य ऐसे हैं जिनमें बहुत सूक्ष्म लिखने की आवश्यकता पड़ती है, जैसे वकालतनामे और मिसलमुआयने के फार्म । इनको हमारे कई मित्रों ने नागरी में दाखिल करने का प्रण किया है और वे करते हैं । छपे वकालतनामे के फार्म और दूसरे कई प्रकार के फार्म अथवा दलालों के फार्म जैसे बेदखली, बकाया लगान, इजराय डिगरी इत्यादि काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, गोरखपुर, झाँसी तथा अन्य स्थानों की सभाओं ने और प्रयाग के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कार्यालय ने छपवाए हैं और वे बहुत सस्ते दाम पर बेचे जाते हैं । जो वकील अपने खास मुहर्रिरों पर अपनी वकालत के द्वारा काम पाने का आसरा रखते हैं वे तो कदापि कठिनाइयों को काटने के लिए उद्यत नहीं हो सकेंगे परन्तु जिन लोगों को अपने बाहुबल का भरोसा है, जिनकी कमर में बूता है, जो इस संसार के रणक्षेत्र में अपने पुरुषार्थ से ताल ठोक कर लड़ने और कार्य्य में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रवेश करते हैं, ऐसे ही उद्यमी तथा साहसी भाइयों से मुझको आशा है और उन्हीं के प्रति मेरी प्रार्थना है । यदि कार्य्य हो सकता है तो उन्हीं लोगों के द्वारा होना सम्भव है । जो लोग केवल इस अभिप्राय से संसार में अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं कि हमको कुछ द्रव्य किसी प्रकार मिल जाय, दूसरों का उससे उपकार हो या अपकार, वे लोग अन्य जीवों की भाँति जीते और मरते ही रहेंगे । कुछ लोग कहते हैं कि अदालतों के मुहर्रिरों द्वारा विरोध होता है और कार्य्य में क्षति होती है । मैं इस बात को माननेवाला नहीं हूँ । कठिनाई तथा विरोध आरम्भ में जैसे हर कार्य्य में होता है वैसे इसमें भी है ।

अदालतों के मुहर्रिर कुछ विरोध अवश्य आरम्भ में करते हैं पर वह केवल बंदरघुड़की की तरह है । जैसे कोई बालक बंदर पर एक ढेला फेंकना चाहे और वह उसको देखता हो तो वह बंदर दाँत निकाल कर खौवाता है परन्तु यदि बालक उस पर ढेला फेंक देता है तो वह मुँह फेर कर और पूँछ दबाकर भागता है । ऐसी ही दशा अदालतों के मुहर्रिरों की हिन्दी के संबन्ध में होती है । यदि हमारे नवयुवक वकील उनकी घुड़की में आकर दब गए तो ये मुकदमा क्या लड़ेंगे और मुकदमा लड़ने का उनमें साहस क्या हो सकता है ? मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि जो कठिनाइयाँ मेरे मार्ग में अदालतों के मुहर्रिरों ने उपस्थित कीं उनसे न डर कर मैं बराबर हिन्दी में काम करता रहा और करता हूँ, परन्तु जब उन विरोधियों के पाप का घड़ा भरा तो फूट ही गया और उनका उनके पापों ने सर्वनाश किया । दो तीन मुहर्रिर तो बहुत बुरी तरह नौकरी से निकाले गए और मेरा काम भली भाँति चल ही रहा है । मैं किसी मुहर्रिर से विरोध नहीं करता परन्तु उनके चित्त में जो विरोध उत्पन्न होता है वह उन्हें खा डालता है । जो लोग उन मुहर्रिरों से डर कर अपना कार्य्य नहीं करते वे निर्मूल भूतों से डरते हैं । यदि एक बार चित्त में डर समा गया तो फिर वह डर अपना स्थान कर लेता है और डर का आकार प्रकार बढ़ता ही जाता है । परन्तु यदि आरम्भ में उस डर के मूल को नाश कर दीजिये और अँधेरी कोठरी में अथवा निर्जन स्थान में जहाँ भूत का होना आपको बताया गया है लालटेन लेकर और चित्त में बल उपस्थित करके देख लीजिये तो वह भूत गायब हो जाता है । और यदि आप भूत से डर गए तो आपके चित्त में भूत के उलटे पैर, लंबी जटा और बड़े बड़े नहँवाली भयानक शकल हमेशा उपस्थित हुआ करेगी और आप अकबक भी किया करेंगे और उस भूत को

छुड़ाने के लिए आपको मिर्चे की धूनी दी जायगी, जूता सुँघाया जायगा और झाड़ू का प्रयोग किया जायगा, बहुत से ओझों और सयानों की बन पड़ेगी, तो भी भूत आपका पिण्ड न छोड़ेगा। यह तो हुआ हमारे पुरुषार्थ का काम। अब अदालतों के मुहर्रिरों की ओर दूसरे प्रकार से दृष्टि दीजिए। गवर्नमेंट ने जो हिन्दी उर्दू दोनों अक्षरों में सम्मन, नोटिस आदि जारी होने की आज्ञा प्रदान कर दी है परन्तु उसके अनुसार कार्य्य नहीं होता।

इसके सम्बन्ध में लाला सुखवीरसिंह या किसी अन्य माननीय महाशय ने लोकल लेजिस्लेटिव कौंसिल में प्रश्न किया था। इस पर आनरेबिल मि० ओडानल ने गवर्नमेंट की ओर से यह उत्तर दिया कि कुल सम्मन और नोटिस दोनों अक्षरों में अदालतों से जारी होते हैं। परन्तु ओडानल साहब का यह कथन असत्य है। मैं नित्य देखता हूँ कि सम्मन और नोटिसें केवल उर्दू अक्षरों में जारी की जाती हैं और प्रायः उर्दू का पर्त ही खानापूरी करके जारी होता है और हिन्दी का पर्त फाड़कर मिसल बाँधे जाने का काम देता है या अन्य रीतियों से रद्दो किया जाता है अथवा हिन्दी का अंश उर्दू अक्षरों में खानापूरी करके जारी किया जाता है। यहाँ आने से पूर्व दो तीन दिन में कुछ ऐसे फार्म मैंने एकत्रित किए हैं और वे आप लोगों के सामने उपस्थित हैं। बनारस की जजी से अपील की हिन्दी अक्षरों में छपी हुई नोटिस उर्दू खानापूरी करके जारी हुई है और बनारस कलकृरी के सम्मन और बेदखली की नोटिस और गवाह के नाम सम्मन, हिन्दी के छपे हुए फार्म में उर्दू में खानापूरी करके जारी किया गया है, और बनारस मुन्सफी से नोटिसें डिगरी जारी होने के सम्बन्ध में जिनका आधा पर्त उर्दू का फार्म है और आधा हिन्दी का, केवल उर्दू अक्षरों में खानापूरी करके जारी हुई हैं और हिन्दी का अंश बिना खाना पूरी किए हुए छूटा है। यदि इस प्रकार के सम्मन और नोटिसें एकत्रित करके गाड़ियों में लदवाकर ओडानल साहब के सामने रख दी जायँ तो कदाचित् उनका भ्रम दूर हो और उनकी आँखें खुलें। यदि केवल उर्दू के पर्त ही उनको दिखलाए जाते तो वे कह बैठते कि हिन्दी का पर्त तुमने स्वयं फाड़ कर अलग कर दिया होगा और व्यर्थ अदालतों के मुहर्रिरों पर दोषारोपण करते हो। यह गलती गवर्नमेंट के क्लार्क मियाँ फितरतहुसैन, आजादअली, दरबारीलाल, अशरफीलाल, व हजारीलाल की नहीं है बल्कि इसके लिए उनको अकारण दोषी बनाना है। परन्तु हमें विश्वास है कि जब हिन्दी के छपे हुए फार्म में उर्दू की खानापुरी की हुई अथवा इजराय डिग्री की नोटिसों में केवल उर्दू का भाग लिखा हुआ और हिन्दी का भाग बिना लिखा उनको दिखलाया जायगा तो वे अवश्य इस ओर ध्यान देंगे।

महाशयो, कुछ अत्यावश्यक फार्म ऐसे हैं जो केवल उर्दू ही में छपे हैं और हिन्दी में नहीं छपे हैं जिसके कारण यदि कोई हिन्दी में लिखना और दाखिल करना चाहे तो नहीं कर सकता अथवा उर्दू के खानों में उलटे हिन्दी में लिख सकता है। उदाहरण स्वरूप इस्मनवीसी अर्थात् दीवानी में गवाहों को तलब कराने के वास्ते जो फार्म होते हैं उन्हें मैं बता सकता हूँ। डिग्रियों के फार्म प्रायः उर्दू ही में छपे हैं, इसलिए यदि उनकी नकल लेनेवाला हिन्दी पढ़ा है जैसा अधिकतर मुकदमों में होता है तो उसको डिग्री पढ़ाने के लिए उर्दू जाननेवालों पर ही निर्भर होना पड़ता है। परन्तु दुःख तो यह है कि जैसे हिन्दी के सम्मन और नोटिसों के फार्म नहीं भरे जाते वैसे मुतफर्कात की डिग्रियों के फार्म में जो हिन्दी का पर्त होता है वह ज्यों का त्यों छठी उँगुली की तरह बेकाम लटका करता है। कलक्टरी की डिग्रियों का फार्म तो उर्दू ही में होता है और हाईकोर्ट की डिग्री भी केवल अँग्रेजी और उर्दू में होती है, हिन्दी में नहीं। परन्तु मैंने जितनी हाईकोर्ट की डिग्रियां देखी हैं उनमें अंग्रेजी और उर्दू दोनों में खाना पूरी रहा करती है। कोई कारण नहीं जान पड़ता कि दीवानी डिग्रिएँ हिन्दी में भी क्यों न हुआ करें और जो मुतफर्कात की डिग्रियां दोनों

अक्षरों में छपी रहती हैं उनमें हिन्दीवाला पर्त भी क्यों न भरा जाया करे ? मैं आशा करता हूँ कि हाईकोर्ट तथा गवर्नमेंट का ध्यान इस ओर शीघ्र आकर्षित होगा और इन त्रुटियों का शीघ्र सुधार हो जायगा।

—:o:—

सभापति का भाषण।

यं ब्रह्मवेदान्तविदो वदन्ति
परं प्रधानं पुरुषं तथान्ये।
विश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं वा
नमोस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ १ ॥
अमरीकबरीभारभ्रमरीमुखरीकृतं।
दूरी करोतु दुरितं गौरीचरणपङ्कजं ॥
या कुन्देन्दुतुषारहारधवला
या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा
या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युत शङ्करप्रभृतिभि-
र्देवैः सदा वन्दिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती
निश्शेषजाड्यापहा ॥ २ ॥

(हरिगीतिका)

अति शुभ प्रकृति ही से सदा,
अव्याज ही जो सुन्दरी।
शुभ देवकन्या की सुता,
शुभ वेश में सुरनागरी॥
नवरस कलित, भूषणवलित,
शुभ नाम हिन्दी बलवती।
हो हिन्द को शुभकारिणी
श्री आर्यभाषा भगवती॥

छप्पै।

प्रिय-सज्जन-समुदाय
आर्य्य-भाषा-हितकारक।
विद्वद्विद्या रसिक
प्रचुर-साहित्य-प्रचारक॥
राज-भक्ति-युत-सदा
देश-उन्नति-अभिलाषी।
हिन्दहितैषी मधुर-
मनोहर-हिन्दी-भाषी॥
परिपूर्ण प्रेम से नित्य जन
स्वीकृत पूर्ण-प्रणाम हो।
इस शुभागमन का शुभ
सुभग सुफल परिणाम हो॥

महाशयो, दिसम्बर का अन्तिम सप्ताह इण्डियन नेशनल कांग्रेस और अनेक कान्फरेंसों के अधिवेशनों के नाम सा लिख ही गया है और इसी कारण वह नेशनल वीक कहा जाय तो उचित है। वे दिन महात्मा Christ के सम्बन्ध से भी पवित्र माने जाते हैं। अब ईस्टर के दिन भी उपयोगी अधिवेशनों के लिए नामांकित से होते जाते हैं। ये दिन भी आत्मसमर्पक महात्मा के सम्बन्ध से त्योहार माने जाते हैं। इस वर्ष के ईस्टर में गोरखपुर के निवासियों ने, परिश्रम, उदारता और देशानुराग की पराकाष्ठा दिखला रक्खी है। ऐसे कार्य बिना स्वार्थ के त्यागे नहीं होते। ये कार्य कर्मयोग के साधन हैं। मैं आप को बधाई देता हूँ कि तीन कान्फरेंसों का भार लिए हुए भी उनके साथ इस चौथी कान्फरेंस को योग देकर चार कार्यों से आपने महायोगी और महाकवि बाबा गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध नगर को चार दिशाओं की प्रशंसा-दृष्टि का पात्र बना दिया।

मित्रो, जब मेरे पास स्वागतकारिणी समिति के अध्यक्ष महाशय का तार इस अभिप्राय से गया कि मैं इस प्रतिष्ठित अधिवेशन का अध्यक्ष बनूं, मैं कुछ कारणों से उक्त पद-सम्बन्ध Duty की उत्तम रीति से पूर्ति करने के लिए निज को समर्थ न समझ सका। इसी लिए मुझे धृष्ट होकर अस्वीकृति का उत्तर देना पड़ा। उसके लिए मैं उनसे और आप से क्षमा का प्रार्थी हूँ। उनके दूसरे तार के पहुँचने पर मुझे अधिक आज्ञा भङ्ग करने का साहस न हुआ। अब इस आसन से जो कुछ त्रुटियां मुझसे बन पड़ेंगा, आशा है कि उन्हें आप दो हेतुओं से

क्षमा करेंगे। एक समय की अल्पता, दूसरे मेरी अल्पज्ञता। अर्थात् आपके पूर्णोपनामधारी सेवक की अपूर्णता। मैं कई अंशों में इस पद के योग्य गुणों से अपूर्ण होते हुए भी हिन्दी-साहित्य के अनुराग से परिपूर्ण हूँ और डयूटी के बिगुल पर उपस्थित हो गया हूँ और आप को इस मानप्रदान के लिए धन्यवाद देता हुआ अपना हर्ष प्रकाश करता हूँ कि वर्तमान आवश्यकताओं को प्रतीत करते हुए साहित्य-सम्बन्धी कुछ वार्ता सुनाने के लिए मुझे यह सुविधा का अवसर और प्रतिष्ठा का स्थान मिला।

महाशयो, इस समय यूरोप में जो महासंग्राम उपस्थित हो रहा है, उसकी चर्चा से समस्त भूमण्डल व्याप्त है और क्यों न हो? मनुष्य-जीवन का कौन सा विभाग है जिस पर उसका प्रभाव नहीं पड़ रहा है? ऐसा कौन सा सांसारिक प्रकरण है जिसमें उस घोर उपद्रव से एक स्थायी विकार भावी प्रतीत नहीं होता। मेरा तो यह अनुमान है कि इस वीरोन्मादरूपी पतझड़ के उरान्त सच्ची सभ्यता का बसन्त आने वाला है। अब तक जिन देश-विदेशों में भौतिक उन्नति और दैहिक सुख को सभ्यता और सच्चा सुख समझा गया है उनमें भुजबल और नवसभ्य देशों में बूढ़े भारतवर्ष बाबा हिन्द के अनुभव की कसौटी के कसे हुए खरे सिद्धान्तों का अब अवश्यमेव प्रवेश होगा। बेचारा अध्यात्म प्रकरण जो यूरोपियन हृदय की देहली पर खड़ा हुआ विषय के बादल से दबी हुई अश्रुतप्राय ध्वनि से "यो वै भूमात्वेवसुखं" पुकार रहा है, उसके भीतर अब प्रवेश पावेगा। आत्म और अनात्म के समन्वय के साथ संसार के कार्य होंगे। मनुष्य-जीवन की दुर्गश्रेणी और देशशासन की नियमावली नवीन प्रकार से गढ़ी जायगी और जाति-वर्ण-भेद-रहित, मनुष्यमात्र की भ्रातृता नदी पर्वत समुद्र की सीमाओं से बाधा न माननेवाली, समस्त देशों की मित्रता और सार्वभौम सुख और लोकव्यापिनी शान्ति के लिए एक उद्देश्य रखते हुए उन सबों के सहोद्योगी बनने की आवश्यकता, उस नियमावली में भुलाई नहीं जावेगी। तभी सच्चा सुख पृथ्वी पर होगा और सच्ची सभ्यता देशों में होगी।

महाशयो, वे दिन अभी दूर हैं। अभी तो दुर्दिन-जनित दुर्दशा, जर्मनी की दुर्जनता, तद्दमनार्थ सम्मिलित जनपदों की समरधीरता, राजभक्त भारतवर्ष की तन मन धन से अपने सम्राट् की सेवा, हिन्दुस्तानी सैनिकों की संग्राम-क्षेत्र में प्राण-पुष्पाञ्जलि, हथेली पर रख कर अपनी मातृभूमि की प्रतिष्ठा और राजभक्ति की सिद्धि के लिए तत्परता, वा ग्रेट-ब्रिटेन और आयरलैंड का अपने आपस के कलहों का इस हेतु से विसर्जन करना कि वे एकत्रित होकर उच्च प्रकार की कार्यशैली से प्रमादशैलारूढ़, वैरी को नीचा दिखला सके, इत्यादि, अनेक आदरणीय, शिक्षाप्रद, और आश्वासक विषय हमारे ध्यान को वर्तमान की ओर खींच रहे हैं। हम लोग राजभक्त प्रजा के भाव से, प्राचीन से प्राचीन सभ्यता के Representatives भाव से, प्रकृति से शान्तिप्रिय मनुष्यों के भाव से, इस युद्ध से भारतवर्ष की हानि समझ कर, स्वभाव ही से ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि भगवन्, धर्म और न्याय के वैरी, अबला स्त्री बाल-वृद्ध की हत्या से महापापी, साहित्य के भवन और पुस्तकालय जलाने से अधमता की पराकाष्ठा दिखलानेवाले, निदान, अकारण ही समर ठान कर लाखों जीवों का विनाश करानेवाले बस्तियों को उजड़वानेवाले, लाखों बच्चों और अबलाओं को अनाथ करानेवाले, रण में छल, पाखण्ड और क्रूरता से वीरत्व को कलंकित करनेवाले, जड़ जर्मनी की जड़ उखाड़ने में अधिक विलम्ब न कीजिए। हमारी गवर्नमेंट को विजय दीजिये, संसार को शान्ति दीजिए, भारतवर्ष को यश और कल्याण दीजिए। देशाभिमानी राजभक्तो! एक स्वर से कहिए, 'भारत सम्राट् की जय' 'भारत वर्ष की जय'।

महाशयो! यह युद्ध चर्चा करते हुए मुझे न्यूनान्यून दो विषय इसी समय कथनीय प्रतीत हुए,

एक तो सभ्यता और साहित्य का सम्बन्ध। दूसरे वीर साहित्य की आवश्यकता। ये दोनों विषय इस सम्मेलन में आदरणीय भी हैं।

साहित्य और सभ्यता।

साहित्य और सभ्यता की व्युत्पत्ति में भाव की बड़ी भारी समानता है। इस समानता से स्वतः इस सम्मेलन की अपने ऊँचे कर्त्तव्य की ओर दृष्टि जायगी।

"साहित्य" बना है "सहित" से, "सहित" का भाव "साहित्य" है। इसलिए उसका अर्थ हुआ मेलन, मेल-मिलाप, साथ देना, सहायता, एक होना, संगठन, इत्यादि। दूसरे शब्दों में "साहित्य" "समाज" ही का व्यञ्जक है और "सभ्यता" शब्द जो अंग्रेजी शब्द Civilisation का पर्य्याय माना जाता है, "सभ्य" से बना है। "सभ्य" का भाव है "सभ्यता"। सभ्य कौन? "सभासम्बन्धी" अर्थात् "सभा" से सम्बन्ध रखनेवाला। "सभा" का अर्थ क्या?

"सह यान्ति अत्र" जहाँ बहुत से लोग एक साथ विराजें वही सभा है, "समूह" भी इसका अर्थ है। असभ्य Uncivilised लोग संगठन, सम्मेलन, अथवा सभा द्वारा समुदाय रूप से कार्य नहीं कर सकते। जिस जाति ने सम्मिलित होना, समुदाय रूप से अपनी और संसार की भलाई करना सीखा है वही सभ्य और Civilised कहलाती है। अब आपने स्पष्ट देख लिया कि 'साहित्य' में और "सभ्यता" में कोई अन्तर ही नहीं है और जहाँ साहित्य वा सभ्यता है, वहाँ उसका प्रतिबिम्ब स्वरूपः पुस्तक-भांडार भी होता है और वह पुस्तकभांडार भी "साहित्य" कहलाता है। अब आया

वीर साहित्य।

वीर साहित्य की चर्चा के लिए, दुःख है कि इस अवसर पर मेरे पास पूरा समय नहीं है। तथापि उसका महत्व मुझे विवश करता है कि मैं उसका स्वल्प ही अंश में उल्लेख करूँ। यह समय है वीरता का, हमें आवश्यकता है वीर होने की, अपनी सन्तान को वीर बनाने की। हम वीर नरेश की प्रजा हैं, जो स्वयं सामरिक वस्त्र सजकर, शस्त्र धारण कर, समराङ्गण में जाते हैं और जिनके दुलारे पुत्र, बारी अवस्था ही में, सेना में भरती होकर, युद्धकौशल प्राप्त कर सकते हैं। वीर राजा की भीरु प्रजा, ऐसी होती है, जैसे बुद्धिमान् सुशिक्षित पुरुष की असभ्य और जड़ स्त्री। सेवा और सहायता दूर रही, उलटे सुख सम्पादन में बाधा डालनेवाली, उन्नति के मार्ग में पीछे पड़ी रहनेवाली, हठ और जड़ता से स्वामी के पीछे पड़ जानेवाली! कदाचित् कोई कहे कि साहित्य-सम्मेलन में इस चर्चा का क्या प्रयोजन! तो मैं उत्तर दूँगा कि "महाशय, आप साहित्य को समझे क्या हैं? क्या आप साहित्य को एक कोठरी में उससे एकान्त सेवन कराना चाहते हैं। अथवा पर्देवाली स्त्री की भाँति संसार की खुली हवा से उसका स्पर्श होना रोकते हैं? क्या आप साहित्य को अज्ञानियों का वेदान्त समझे हुए हैं? जो मनुष्य जीवन को दो अंशों में एक दूसरे से कोई सम्बन्ध न रखनेवाले दो भिन्न भिन्न टुकड़ों में विभक्त करता है और सिखलाता है कि "संसार से भागो, जंगल में बैठो, माता, पिता, भाई, सेवक, राजा, प्रजा, गुरु चेला, सभा, अधिकारी, पत्रसंपादक, वक्ता, श्रोता, रिफार्मर, युद्धकारी इत्यादि के कर्त्तव्य ये सब "झूठे जगत् झमेले" हैं, 'ईश्वर को खोजो और संसार को त्यागो'! इत्यादि २ के कर्तव्य। वाह! खूब, बहुत समझे। वेदान्त को, कर्मयोग को, ईश्वर के स्वरूप को, उसके निर्माण किए हुए संसार को! यदि ऐसे ही अज्ञान से "साहित्य" को भी एकान्तवासी योगी बनाना है तो चलिए छुट्टी हुई, हम और आप सब चैन से अपने घर बैठें।

अजी महाशय!

जगत् मध्य आकाश सम,
छाया है साहित्य।
कार्यक्षेत्र में ब्रह्म की,

माया है साहित्य ॥
विद्या के आदित्य की,
छाया है साहित्य ।
कार्यतत्व है प्राण तो,
काया है साहित्य ॥
अन्धकार का अपहरण,
करता है आदित्य ।
सत्कर्त्तव्य सुपंथ का,
सूरज है साहित्य ॥
है सुख और विपत्ति में,
जनहितकर साहित्य ।
सचिव और सच्चा सखा,
है गुरुवर साहित्य ॥
अवनति-रूपी ग्रीष्म में,
है पाला साहित्य ।
खेती को उद्योग की,
घनमाला साहित्य ॥
निगमागम साहित्य हैं,
हैं पुराण साहित्य ।
ज़ेन्दावस्ता बाइबिल,
है कुरान साहित्य ॥
शिल्प नीति विज्ञान शुभ,
विविध काव्य इतिहास ।
आदि ग्रन्थ-समुदाय सब,
है साहित्य विकास ॥

गिरी हुई जाति वा देश को एक बार फिर उन्नति के ऊँचे आसन पर बैठने के लिए उत्साह देना, उत्तेजित करना और धीरतापूर्वक उद्योग कराना, साहित्य का गुण है । सभी प्रकार के सुधार और संशोधन में प्रवृत्त करना, साहित्य का गुण है । कुटुम्ब, समाज और देश की सेवा के लिए तत्पर कर देना साहित्य का गुण है । धर्म के अभिमुख करना, अधर्म से निवृत्त करना, मनुष्य कर्तव्य का स्मरण कराना, संसार मात्र को कुटुम्बवत् दरसा कर उसका हितकारी बनाना, धन, बल, यश, प्रतिष्ठा प्राप्त कराना, कहाँ तक कहें, मनुष्य जन्म को सफल कराना, गिरे हुए जीव को ऊर्द्ध्वगामी बना कर ब्रह्मपद तक पहुँचाना साहित्य ही का गुण है । फिर भला वीरता का प्रकरण इससे बाहर कैसे ? हाँ, अपने नियमों का निर्वाह करते हुए हम इस प्लैटफार्म पर विवादग्रस्त पोलिटिकल विषयों पर अपनी सम्मतियों का प्रकाश नहीं कर सकते । तथापि, हमारे लेखक, हमारे कवि, हमारे वक्ता, हमारे उपदेशक, देश और काल की आवश्यकता की रङ्गत से अपनी वाणी को शून्य नहीं रख सकते । जिसको विधाता ने वाणी की शक्ति दी है, उससे आशा की जाती है कि उस शक्ति से वह उसी विधाता की रची हुई प्रजा को लाभ पहुँचा कर "परोपकाराय सतां विभूतयः" को सार्थक करेगा । हम लोग संसार के प्रसिद्ध कवियों में उन्हीं का विशेष आदर करते हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभाशक्ति से रसिक मनोरञ्जन के अतिरिक्त संसार को प्रभावशाली उपदेश भी दिए हैं । वीर साहित्य भारतवर्ष में बहुत है । रामायण, महाभारत, पुराण, उपपुराण, उससे परिपूर्ण हैं परन्तु हिन्दी में अभी उसकी बहुत न्यूनता है । नायक-नायिका-भेद के पक्षपातियों ने, तत्सम्बन्धी शृङ्गार काव्य की हिन्दी में इतनी भरमार की, कि उस प्रकार का पद्य साहित्य-आकार में कदाचित् संस्कृत से भी अधिक बढ़ गया और नायिकाओं का ऐसा विभाग और अन्तर्विभाग किया गया कि आप संसार की नदियों के नाम चाहे कण्ठ कर लें परन्तु नायिकाओं के नाम और लक्षण स्मरण रखना विना घोर परिश्रम के असंभव है ।

जिन पुस्तकों में बेचारे वीर चार ही प्रकार के लिखे गए और वीरों के उदाहरण एक आध पन्ने में समाप्त कर दिए गए, उनमें नायिकाओं को सौ सौ पत्रों की पुष्पाञ्जलि चढ़ा दी गई और गिनती चार हजार के ऊपर बढ़ा दी गई ! इसका कारण क्या हुआ ? कवियों को दान देने में समर्थ राजाओं की विषयलोलुपता, और धनलोलुप कवियों की उनके भावों के अनुकूल पद्य लिखने की तत्परता ! इसके अतिरिक्त अधःपतन के प्रवाह में कवि और रसिक

दोनों के हृदय में ऊँचे भावों का तिरोभाव ! जो हो अब गुलछर्रे उड़ाने का अवसर नहीं रहा। अब तक हमने कवि मतिराम की भाँति स्त्री जाति के हावभाव गुण अवस्था आदि में जितना काव्यरूपी पुरुषार्थ व्यय किया है उतना ही उनके भाई भूषण की तरह अब अपना वीर्य पराक्रम वीरों को जगाने में, भीरु लोगों को वीर बनाने में, अर्पण करें। ब्रह्मचर्य सिखलावें, कानून की मर्यादा के भीतर देश सेवा सिखलावें, देश के वैरियों से न दबना और उनको अमोघ उत्तर देना सिखलावें। विदेशियों के अवगुण का तिरस्कार और उनके गुण मात्र का ग्रहण करना सिखलावें, इन्द्रियों की वशता छुड़ा कर, संयम और हठ सिखलावें, कला और उद्योग सिखलावें, आलस्य का बहिष्कार, और परिश्रम का हर्षपूर्वक अङ्गीकार सिखलावें। धर्म पालन के सामने प्राण और सर्वस्व को तिनके के समान जानना सिखलावें। तभी साहित्य का उद्देश्य सफल होगा। तभी शिक्षा का उद्योग सफल होगा।

स्वर्गनिवासी अयोध्या-नरेश महाराजा सर प्रतापनारायणसिंहजी ने अपने रसकुसुमाकर में केवल तीन प्रकार के वीर लिखे हैं अर्थात् युद्धवीर, दानवीर, दयावीर; कोई कोई चौथा प्रकार धर्मवीर भी मानते हैं! बस? वीर साहित्य का इतना ही विस्तार? नहीं नहीं! उसका उतना ही विस्तार होगा जितना श्रृङ्गार का हो चुका है। नायिका के सबसे पहिले तीन भेद किए गए, स्वकीया, परकीया, गणिका। फिर स्वकीया के तीन भेद किए गए मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा। फिर इनके भी अन्तर्भेद हैं। इस विभाग के अतिरिक्त अवसर विशेष के विचार से, प्रोषितपतिका, खंडिता इत्यादि १० भेद हैं। परकीया के विशेष भेद इनसे पृथक् ही हैं। कहाँ तक सुनियेगा, केशवकृत रसिकप्रिया के टीकाकार सरदार कवि ने ९२५२ भेद माने हैं। फिर नायिका का नखशिख वर्णन होता है। सखी और दूती का वर्णन होता है। श्रृङ्गार आभूषण का वर्णन होता है। स्वेद-रोमाञ्च इत्यादि ९ सात्विक भावों का वर्णन होता है। लीला-विलास इत्यादि १२ हाव होते हैं, इत्यादि।

सत्य ही साहित्य के आचार्यों ने इस विस्तार में अद्भुत अनुभव, विवेकशक्ति, और वर्णनशक्ति दिखलाई है। नायिका भेद मनोवेगों का समुद्र है। अश्लील प्रसङ्गों को छोड़ कर श्रृङ्गार-साहित्य का चमत्कार प्रशंसा के योग्य है और प्रेम और अनुराग से गर्भित होने के कारण उपासना में भी उपयोगी है। क्या अच्छा हो यदि वर्त्तमान समय के कवि उसकी छाया पर वीर-साहित्य की रचना कर डालें। लीजिये आपके विनोद के लिए और अपना अभिप्राय दरसाने के लिए मैं कुछ उदाहरण देता हूँ। प्रतिभाशाली लेखक यदि मेरा मनोरथ सिद्ध करेंगे तो मैं क्या, हिन्दी-साहित्य और हमारा देश सभी उनका उपकार मानेंगे।

युद्धवीर, दानवीर, दयावीर, धर्मवीर, के अतिरिक्त हमको और भी कई प्रकार के वीर मानना चाहिए। चाहे वे उक्त चार में से किसी के अन्तर्गत ही क्यों न हो जायँ, जैसे—

सत्यवीर, वह वीर है जो सत्य में दृढ़ रहे।

वचनवीर, वह वीर है जो वचन के पालन में दृढ़ रहे।

सेवावीर, नाम ही से लक्षण विदित है। उसके अन्तर्गत स्वामिसेवावीर, उदाहरण हनुमान।

देशसेवावीर, उदाहरण, गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आदि।

उद्योगवीर, वह वीर है जो परोपकार के लिए असाधारण उद्योग करें, उदाहरण, हिन्दू-विश्वविद्यालय के लिए उद्योग करनेवाले मदनमोहन मालवीय।

लेखवीर—जो देश और समाज के हित के लिए उत्तम पुस्तकें लिखें। उदाहरण, महावीरप्रसाद द्विवेदी।

भाषणवीर—प्रभावशाली वक्तृता से परोपकार करनेवाले, उदाहरण, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सर फीरोजशाह मेहता, स्वामी विवेकानन्द, श्रीमती एनी बीसेन्ट।

परमार्थवीर—धर्मपालन में, असाधारण स्वार्थ-त्याग व असाधारण द्युति दिखलानेवाला, उदाहरण, दधीचि, मोरध्वज, पन्ना दासी ।

क्षमावीर—उदाहरण, भृगु की लात सहनेवाले विष्णु, राक्षसों का उपद्रव सहनेवाले विश्वामित्र, बम से घायल होकर कोप न करनेवाले लार्ड हार्डिन्ज ।

रक्षावीर—शरण वा रक्षणीय की रक्षा करनेवाला रक्षावीर, जैसे हम्मीर, दिलीप ।

देशाभिमानवीर—देश की प्रतिष्ठा के लिए अन्याय वा अधर्म का विरोध करते हुए अपने धन और शरीर को तुच्छ जाननेवाला वीर, उदाहरण—साउथ एफ्रिका के विकट आन्दोलन में महानुभाव गन्धी और उनकी धर्मपत्नी ।

सती वीराङ्गना—नाम ही से लक्षण सिद्ध है । उदाहरण—सती, गैारी, सावित्री, अरुन्धती, सीता, गान्धारी, पद्मिनी, गुन्नार की रानी, नीलदेवी, पयम्बर अयूब की धर्मपत्नी इत्यादि ।

इस तरह बहुत प्रकार के वीरों का छन्द व उदाहरणों समेत ऐसा उल्लेख हो सकता है जिसके श्रवणमात्र से दूसरों के हृदय में वीरोत्साह उत्पन्न हो जाय ।

इस वीरभेद के अतिरिक्त नायिका भेद की अवस्थाओं, हावों भावों के जवाब में भी अत्यन्त प्रभावशाली काव्य करने की अपेक्षा है । यथा प्रियतम के पास गमन करने के अभिसारिका के उत्तर में वीराभिसार का वर्णन भी होना चाहिए । चाहे वह युद्धवीर हो जो युद्ध के लिए जा रहा है अथवा और प्रकार का वीर हो और किसी दूसरे वीर कार्य्य के लिए जा रहा हो, जैसे मेघनाथ से लड़ने को लक्ष्मण जी का प्रस्थान । विप्रलब्धा नायिका के जवाब में उस वीर की अवस्था कि जो युद्ध के लिए गया परन्तु दूसरे पक्ष के क्षेत्र में उपस्थित ही न हो पाया इस कारण उसे विषाद हुआ ।

प्रतिज्ञा—अर्थात् वीर का प्रतिज्ञा करना कि अमुक कार्य करके छोड़ूँगा । उदाहरण—भीष्मपितामह का वचन महाभारत में:—

जो मैं हरिहिं न शस्त्र गहाऊँ,
तो लाजूँ गंगा मैया को,
शान्तनु-सुत न कहाऊँ । इत्यादि ।

लक्ष्मण वचन, धनुषयज्ञशालाः में—

तोरौं छत्रक दण्ड जिमि,
तव प्रताप बल नाथ ।
जो न करौं, प्रभु पद शपथ,
पुनि न धरौं धनु हाथ ॥

सावित्री की प्रतिज्ञा सत्यवान को अल्पायु जान कर भी कि सत्यवान ही के साथ विवाह करूँगी ।

तथा सत्यवती चन्द्रकला की प्रतिज्ञा—

करि अधीन मन एक के,
गुनहुँ न औषधि स्वामि ।
प्रन न रह्यो जो हे सखी,
प्रानहुँ का प्रण मानि ॥

वीर साहित्य की यह चर्चा लिखते हुए कलमरूपी तुरङ्ग के धावे के लिए एक लंबा चौड़ा मैदान दिखलाई देने लगा जिससे मुझे उसकी बाग खींचना ही उचित प्रतीत हुआ । अब कुछ ही उदाहरण देकर इस प्रकरण को समाप्त करता हूँ ।

चारण वचन—वीररस का उद्दीपन ।

एकन से एक बली तेजसी समरधीर
बीर जब धावें भरे साहस गुमान में ।
तृन के समान निज प्रान बलवान लेखें
राखैं न तनक नेह तीय तनयान में ॥
रिपुन समूह सामने को होत बाँको समै
तोन में तें एक जहाँ होनहार आन में ।
भागें ते कहावैं कूर जीत नाम पावें सूर
मरैं ते सिधारैं सुरपुर को विमान में ॥

पुनः चारणवचन, निज पक्ष का उत्साहवर्द्धन, विपरीत पक्ष का मनोमर्दन ।

धावै रे समरधीर गाजै रे विकट बीर
वैरिन को अंग खोर करहु पछार झार ।
मारै रे सघन तोर काटै रे रिपुन भीर
छेदै रे शरीर हूल हूल शूल धारदार ॥
डारै रे सबन चीर नेक न विचारै पीर

औसर मिलै न वीर बाजिवे को बार बार।
शत्रु हिये हार हार भागे शस्त्र डार डार
धाव धाव मार मार काट काट फार फार॥
कुंजरन झुंडन ज्यों केहरी गरजि गुंजि
चीर अरि भीर वीर तैसे चित चोपे हैं।
शत्रुन कटक काटि काल को कलेऊ दै दै
रुंड मुंड सागरी समरभूमि तोपे हैं॥
बानन की बरखा कृपानन की घमासान
भालन की बारन न काहू पग रोपे हैं।
भागहु रे वैरियो बचाओ निज प्रानन को
भानु औ प्रताप आज दोउन रन कोपे हैं॥

वीररस वार्ता के उदाहरण।

उदाहरण—रावण बाणासुर संवाद, केशवकृत रामचन्द्रिका में।

अथवा—

कह लंकेश कौन तैं बन्दर।
मैं रघुवीर दूत दशकंधर॥
याको फल पावहुगे आगे।
बानर भालु चपेटन लागे॥

अथवा—

अस मन समुझि सु कहत जानकी।
खल सुधि नहिं रघुवीर बान की॥

पराजित की उक्ति।

नाथ एक आवा कपि भारी।
जेहि अशोक बाटिका उजारी॥
खायसि फल अरु विटप उपारे।
रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे॥

भारि डारी मालिन की भीर धीर बानर ने
मल्लन की नखन विदारि डारी छाती है।
नोंच डारी डाढ़ी गाढ़ी खाल लैं खरोंच डारी
मोंछ डारी झटकि उपारि उतपाती है॥
भाग कोई विरलो पुकारो रखवारो जाय
आयो कपि भारो बरियारो महाघाती है॥
बाग में न राख्यो शाखी, शाखो में न राखी शाख
शाखा में न राखी एक शाखामृग पाती है॥
काहू के उखारे हाथ काहू के विदारे माथ
काहू के हँकारे साथ कीन्हीं चूर छाती है।
गरजि गरजि डांट चरजि चरजि छांटे
तरजि तरजि काटै ऐसो महाघाती है॥
एरे दशकंदर सुबाटिका के अन्दर यों
छाई धूम बन्दर महान उतपाती है।
बाग में न रूख रहे, रूख में ना शाखा रही
शाखा में न फल है न फल है न पाती है॥

बार वर्णन।

फन फटकार शेष बल के सँभार धार
झुंड झटकार घोर दिग्गज चिग्घारे हैं।
कच्छप विकल भो कोलाहल करत कोल
सिंधु जल होत हिलकोरे तुङ्ग भारे हैं॥
चकित जकित जै जै रटत सभीत सुर
राकस समूह शोर हाहाकार पारे हैं।
जाही छिन कोपि कोपि ताकि ताकि रावन को
रामचन्द्र जू ने इकतीस बान मारे हैं॥

दुष्ट के दमन पर प्रसन्नता की उक्ति।

बालि अनुज-नारी-रतहिं,
हन्यो राम बल सींव।
त्यों कामातुर कीचकहिं,
पटक पछारयो भीम॥

उत्साहजनक शिक्षा का उदाहरण।

जागो जागो बन्धुगण आलस सकल विहाय।
देशहितै अर्पण करो मन वाणी अरु काय॥
मन वाणी अरु काय देशसेवा को जानो।
जीवन धन यश मान उसी के हित सब मानो॥
वीर जनो! अब खेत छोड़ मत पीछे भागो।
सोतों को दो चेत, करो ध्वनि "जागो जागो"॥

दयावीर।

सुनि सेवक-दुख दीनदयाला।
फरकि उठे दोउ भुजा विशाला॥

दुःखी को आश्वासन।

सुन सुग्रीव मैं मारिहौं, बालिहिं एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र शरणागतहुँ, गए न उबरहिं प्रान॥

धनुषयज्ञ के पूर्वः—

देखी बिपुल बिकल वैदेही ।
निमिष बिहात कल्प सम तेही ॥
तृषित बारि बिन जो तनु त्यागा ।
मुए करै का सुधा-तड़ागा ॥
का वर्षा जब कृषी सुखाने ।
समय चूकि पुनि का पछताने ॥

कर्म भक्ति वा प्रार्थना के वचनों से भी दयावीर का वर्णन हो जाता है ।

जरत सकल-सुर-वृंद,
विषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मतिमंद,
को कृपालु शङ्कर सरिस ॥

वारन की आरत गुहार सुनि दीनबंधु धाय चित दीन्हों ताहि ग्राह ते उबारन में ।
दुखी जानि भार ही को ध्यान को रमायो किधौं अंडन बचाइबे कों घंटा तोरि डारन में ॥
किधौं सुनि द्रौपदी की टेर करुणा की भरी राखन कौ लाज लागे अंबर सँवारन में ।
पतित उधारन हा करुणाजलधिनाथ बार क्यों लगाई मेरी बिपत बिदारन में ॥

महाशयो, अब मैं अपने निवेदन के शेष अंशों में प्रवेश करना चाहता हूँ । यदि मैंने वीररस की उमङ्ग में आपका समय लेते हुए आप में से किसी को भी अप्रसन्न किया हो तो मैं क्षमा का प्रार्थी हूँ । समय और देश की दशा को देख कर मुझसे इतना कहे बिना नहीं रहा गया । कवि कर्तव्यों में एक प्रधान कर्तव्य पर इतना आग्रह किये बिना न रहा गया । जिस अवस्था में हमारे बच्चों को कसरती, फुर्तीले, जवान, साहसी, तेजस्वी, ब्रह्मचारी, होना चाहिये उस अवस्था में हम जब उन्हें निस्तेज, रुक्षबदन, सुकुमार और भीरु पाते हैं और चूहे समान एक आध बच्चे का बाप पाते हैं तब हम दीर्घ साँस लेकर अपने ही हृदय से पूँछते हैं "क्या अभागे भारतवर्ष का उद्धार ऐसे ही गबड़ू बाबुओं से होगा ?" मैं फिर आप से क्षमा माँगता हूँ परन्तु फिर दीनतापूर्वक और बारम्बार कहता हूँ कि इन बच्चों को समर्थ बनाना साहित्य का काम है और साहित्य को उस कार्य के लिए समर्थ बनाना समर्थ कवियों, लेखकों, व्याख्याताओं और उपदेशकों का काम है । मैं वाणी के व्यवहार को संसार के व्यवहार से एक क्षण को भी अलग नहीं मान सकता । मेरी देशकल्याण की प्रार्थना का उपक्रम हैः—

लक्ष्मी दीजै लोक में मान दीजै ।
विद्या कीजै सभ्य सन्तान दीजै ॥
हे हे स्वामी प्रार्थना कान कीजै ।
कीजै कीजै देशकल्यान कीजै ॥

और उपसंहार हैः—

समस्त वर्णाश्रम धर्म मानैं ।
सदाहि कर्त्तव्य प्रधान जानैं ॥
यशी तपस्वी बुध वीर होवें ।
बली प्रतापी रणधीर होवें ॥

(अपूर्ण ।)

—:o:—

चीन का इतिहास ।

(श्रीयुक्त प्रो० रामनाथन एम० ए० के अँगरेजी लेख के आधार पर ।)

(१)

न देश के निवासियों का इतिहास पर सदा पूरा पूरा ध्यान रहता आया है । साम्राज्य की प्रधान प्रधान घटनाओं का, इतिहास के लिए, पूरा और ठीक विवरण रखना वहाँ की सरकार का मुख्य कर्त्तव्य समझा जाता है । हजरत नूह की बाढ़ के पहले के चीनी साम्राटों तक के नाम और कार्य आदि अब तक चीन के इतिहास में पाए जाते हैं । इस अवसर पर वहाँ के भिन्न भिन्न राजाओं और राजकुलों के उत्थान और पतन आदि का अलग अलग वर्णन न देकर संक्षेप में उनके सम्बन्ध में कुछ बातें बतलाई जाती हैं ।

पूर्व इतिहास।

अनुमान किया जाता है कि चीन देश के आदिम निवासी ईसवी शताब्दी से २३ सौ वर्ष पूर्व कैस्पियन समुद्र के दक्षिणी तट (वर्त्तमान फारस के उत्तरी भाग) से चल कर वहाँ आए थे। उनकी भाषा तथा सामाजिक और धार्म्मिक रीति-नीति आदि बैबिलोन की प्राचीन जाति एकेड आदि से मिलती जुलती है। आरम्भ में वे लोग खानाबदोश थे, भेड़ बकरियाँ चराते थे और शिकार करके अपना निर्वाह करते थे; पर आगे चल कर वह यैंकसी और ह्वँगरो नदियों के आस पास के मैदानों में बस गए और खेती बारी करने लगे। पहले तो वे लोग अलग अलग सरदारों के अधीन दल बाँध कर रहते थे, पर आगे चल कर उन्होंने अनेक मांडलिक राज्यों की स्थापना की। कुछ दिनों बाद इनमें भी अनेक विभाग हो गए जिससे मांडलिक राजाओं की शक्ति बहुत कुछ घट गई। ह्वांगटी नामक राजा ने यह सिद्धान्त निकाला कि जिस प्रकार आकाश में केवल एक सूर्य होता है उसी प्रकार जाति में केवल एक शासक होना चाहिए; और इसी सिद्धान्त के अनुसार उसने भिन्न भिन्न छोटे राजाओं को दबा कर अपना साम्राज्य स्थापित किया। तातारियों के आक्रमण से बचने के लिए उसने प्रसिद्ध "चीन की दीवार" का बनवाना आरम्भ किया जो ईसा से २११ वर्ष पूर्व बनकर तैयार हो गई। उसके समय में गणित-ज्यौतिष की अच्छी उन्नति हुई, पंचांगमें सुधार हुए और अनेक निरर्थक प्रथाओं का अन्त हुआ। साम्राज्य को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए वह साहित्य और साहित्य-सेवियों का शत्रु हो गया और उसने चिकित्सा और कृषि-शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों को छोड़कर सब प्रकार के ग्रन्थ जलवा दिए। ह्वांगटी के परवर्त्ती शासक उतने योग्य और समर्थ नहीं हुए और उनके राज्य में अनेक छोटे छोटे स्वतंत्र शासक और अधिकारी बन गए। अन्त में हान राजवंश के काओटी नामक राजा ने फिर उन सब को परास्त करके एक साम्राज्य की स्थापना की। उसके शासन काल में, आने जाने के मार्गों का सुधार और संस्कार हुआ, पहले पहले झूलने पुल बनाए गए और ह्वांगटी द्वारा नष्ट किए हुए साहित्य के पुनरुद्धार के अनेक प्रयत्न हुए। चीन में चिरकाल के लिए बौद्ध-धर्म्म को दृढ़ता-पूर्वक संस्थापित करनेवाला हान-मींगटी-इससे भिन्न, दूसरा राजा था।

अन्तिम हान के पतन और प्रथम तांग के उत्थान के मध्य प्रायः चार सौ वर्ष (२२० से ६१८ ईसवी तक) का अन्तर पड़ा था। इस बीच में साम्राज्य पहले तीन और पीछे छः स्वतंत्र खण्डों में विभक्त हो गया था और उनमें प्रायः परस्पर युद्ध भी हुआ करते थे। उस काल की मुख्य घटना केवल फाह-सीन की भारत-यात्रा ही है जिसका आरम्भ सन ४०० ईसवी में और अन्त चौदह वर्ष बाद हुआ था। चौदह वर्ष बाद वह भारत से अपने साथ बहुत सी अच्छी अच्छी पुस्तकें लेकर लौटा था। तांग राज-वंश के उत्थान के साथ ही साथ चीनी साहित्य के भी सुदिन आए और उसी समय से कनफूची के उपदेशों का, जो बुद्ध के उपदेशों के सामने कुछ दब से गए थे, फिर से प्रचार होने लगा। कोरिया के राज-कार्य्यों में जापान के हस्तक्षेप का प्रश्न लोग आजकल सुना करते हैं। तांग वंश के सब से बड़े राजा ताओत्सांग ने कोरियावालों को अपने अधीन करने के अनेक प्रयत्न किए थे, पर उसे सफलता न हुई। पर उसके उत्तराधिकारी काओत्सांग ने, अथवा यों कहिये कि उसकी पत्नी महारानी वू ने उस प्रयत्न में बहुत कुछ सफलता पाई थी। कोरिया के महाराज ने जापानियों को अपनी सहायता के लिए बुलाया था। पर महारानी वू ने अपनी सारी शक्तियाँ युद्ध में लगा दीं और अन्त में जापानियों और कोरियनों के संयुक्त बेड़े नष्ट कर दिए।

ताँग राजवंश का अन्त और मिंग राजवंश का अभ्युदय।

तांग राजवंश के दुर्बल हो जाने पर, उसके

पतन से कुछ पूर्व ही साम्राज्य के दक्षिणी भाग पर तातारियों का आक्रमण होने लगा था। कई बार लड़ झगड़ कर उन्होंने अन्त में मैंगसी के समस्त उत्तरी भाग पर अपना पूरा पूरा अधिकार कर लिया। इसके बाद प्रायः दो सौ वर्षों में उनके सहवर्गी किन तातारों ने उन्हें वहाँ से मार भगाया। दक्षिणी चीन के अधिकारी संग लोगों ने इन तातार विजेताओं की अधीनता स्वीकार कर ली। उन लोगों ने कभी शान्ति भंग न होने दी और जब जब उनके पड़ोसियों ने किसी प्रकार का उपद्रव आरम्भ किया तब तब उन्होंने धन आदि देकर उन्हें शान्त कर दिया। इस प्रकार की हेय शान्ति के कारण वे लोग युद्ध-विद्या एक दम भूल गए और इसी लिए जब चंगेजखा ने चीन पर आक्रमण किया तो वे और किन तातार बड़ी सरलता से परास्त हो गए। इस मंगोल राजवंश में कुबलईखाँ सबसे अधिक प्रसिद्ध शासक हुआ था। वेनेशिया के मारको पोलो नामक यात्री ने जो प्रायः १३ वीं शताब्दी के अन्त में वहाँ गया था, उसके शाही दरबार का बहुत अच्छा वर्णन किया है। कुबलईखाँ का जापानियों से भी कुछ झगड़ा हो गया था क्योंकि जापानी लोग प्रायः चीन और कोरिया के तटों पर छोटे मोटे आक्रमण किया करते थे और जब वे इस प्रकार अपना उद्देश्य सिद्ध करने में समर्थ नहीं हुए तो अन्त में उन्होंने अपना बेड़ा भी आक्रमण करने के लिए भेजा था। पर जापानियों को इस प्रयत्न में भी सफलता नहीं हुई। इसी बादशाह के शासन-काल में कैथोलिक मिशनरियों ने मंगोलों में ईसाई धर्म्म के प्रचार का आरम्भ किया था। इससे पहले सन् ६३५ में भी कुछ नैस्टोरियन धर्म्माधिकारी चीनियों को ईसाई बनाने के लिए वहाँ गए थे। वहाँ के अधिकारियों के विरोध करने पर भी उन लोगों को अपने प्रयत्न में थोड़ी बहुत सफलता हुई थी। तांग राजवंश के समृद्धि-काल में, ताओत्संग के राजत्व-काल में, धर्म्मप्रचार के अभिलाषी पोप ने चीन के राजदरबार में अपना एक दूत भेजा था। उस दूत ने वहाँ देखा कि फारस और नैपाल के राजदूत बड़े सम्मान से रखे गये हैं। कुबलईखाँ के पिता मंगूखाँ के शासन-काल में जान डी प्लैनो कारपीनो फ्रायर रबिक्किस वहाँ गये थे और खाँ ने उनका अच्छा आदर सत्कार किया था। उन्होंने नैस्टोरियन क्रिस्तानों की वहाँ दुर्दशा देखी; इसके अतिरिक्त स्वयं उनके उपदेश वहाँ बड़े चाव से सुने जाते थे क्योंकि मंगूखाँ और उनके दरबारी प्रायः हर समय नशे में चूर रहते थे। मारको पोलो ने कुबलईखाँ से भेंट करके उसे पोप के मित्रता और आश्वासन-सूचक पत्र आदि दिए। काफिर चीनियों को धर्म्म का उपदेश करने के लिए उसके साथ और भी बहुत से पादरी थे। कुबलईखाँ के परवर्त्ती शासक अकर्म्मण्य और दुर्बल थे इसलिए हैंगवा के नेतृत्व में चीनियों ने अपने आपको मंगोलों की अधीनता से निकाल लिया।

मिंग राजवंश।

हैंगवा के शासन काल में हैनलिन के विद्या-पीठ का संस्कार हुआ था और उसी ढंग का एक और पीठ दक्षिणी राजधानी नानकिंग में स्थापित हुआ था। उसी के समय में चीनी राजनियम संगठित और लिपि-वद्ध हुए थे। यह कार्य्य बहुत ही महत्व-पूर्ण था और इससे सर्वसाधारण को बहुत लाभ पहुँचा। हैंगवा के वंशज जो मिंग कहलाते थे, बहुत दिनों तक चीन का शासन करते रहे; पर आगे चलकर मंचू राजवंश ने उनको परास्त कर दिया। चीन पर तब से अब तक मंचू राजवंश का ही शासन रहा। मिंग राजवंश के चैंगटे नामक राजा के समय में जो सन् १५०६ से १५२२ तक शासक रहा, पुर्त्तगाली लोग चीन के दक्षिण तट पर पहुँचे थे। उस समय थोड़े से जहाजों को लेकर डी, 'आरडेड ने वहाँ प्रवेश किया था और कैन्टन के अधिकारियों ने उसका यथेष्ट आदर सत्कार किया था। वहाँ से चलकर वह पेकिंग गया और कई वर्षों तक वहाँ अवैतनिक राजदूत की भाँति रहा।

कुछ दिनों बाद निंगपो और दूसरे कई स्थानों में पुर्त्तगालियों ने कुछ उपद्रव और उत्पात किया; और इसी लिए डी' आरडेड पकड़ कर कैद कर लिया गया। छः वर्ष तक वह कैद में पड़ा रहा और अन्त में उसका सिर काट लिया गया। पुर्त्तगालियों के साथ व्यवहार करके चीनी लोग बुरी तरह धोखा खा चुके थे इसलिए आगे चलकर उन्होंने ग्जैवियर और मिचेल राजर जैसे मिशनरियों को भी चीन में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दी। पर रिस्सी को जो सन् १५८२ में मेकाओ पहुँचा था, कुछ विशेष सफलता हुई। अपनी सहानुभूति, विद्वत्ता और उदारता आदि के कारण सब श्रेणियों के चीनियों में उसने अच्छी प्रतिष्ठा और मर्यादा प्राप्त कर ली और पेकिंग में सम्राट् ने उसका बहुत अच्छा स्वागत किया। उसके निरीक्षण में चीन में ईसाई धर्म की अच्छी उन्नति हुई। साहित्य-सेवी सू और उसकी पोती को उसी ने ईसाई बनाया था। उसी अवसर पर (१६ वीं शताब्दी के अन्त में) कोरिया के शासन के सम्बन्ध में चीन और जापान में फिर झगड़ा हुआ। मिंग राजाओं ने नी राजवंश को कोरिया के राज्यासन पर आरूढ़ होने में बहुत सहायता दी थी और तभी से कोरिया पर चीनियों का बहुत दबाव पड़ता था; जापानियों की उन दिनों वहाँ कुछ भी न चलती थी। कोरिया के आन्तरिक विरोध और वैमनस्य से लाभ उठाकर हिदेयोशी नामक एक जापानी जनरल ने प्रायद्वीप में पहुँच कर सन् १५९२ में सिओल पर अधिकार कर लिया। कोरियावालों ने चीनियों से सहायता के लिए प्रार्थना की। तदनुसार चीनियों ने कोरिया में में अपनी बहुत सी सेना भेजी जिसे उक्त जापानी जनरल ने परास्त कर दिया। पर इसके बाद ही पिंगयांग के निकट चीनियों ने अन्तिम पूर्ण विजय प्राप्त कर ली और साथ ही हिदेयोशी की फिर से आक्रमण की तैयारी करने में अचानक मृत्यु हो गई और इसी लिए दोनों देशों में शान्ति भी स्थापित हो गई।

मंचू राजवंश द्वारा सदा के लिए नष्ट होने से कुछ ही पहले वानली के दीर्घ और सुखद शासन के कारण मिंग राजवंश उसी प्रकार चमक उठा था जिस प्रकार बुझने से पहले दीपक प्रज्वलित हो उठता है। वानली के शासन काल में मंचुओं ने उसकी अधीनता स्वीकार करके उत्तरी चीन में अपना अड्डा बना लिया था। पीछे नुराचू और तींत्संग के समय में चीनियों और मंचुओं में कई लड़ाइयाँ हुई थीं और अन्त में मंचुओं की ही विजय हुई थी।

मचूं राजवंश।

संयुक्त चीन पर शासन करनेवाले पहले मंचू सम्राट् का नाम शुंशी था। उसके शासन-काल में दो युरोपियन राजदूत पेकिंग पहुँचे थे—एक तो डच और दूसरा रूसी; पर उनका स्वागत उत्साहजनक नहीं था। सम्राट् की इच्छा थी कि ये राजदूत उसकी सेवा में उपस्थित होते समय "कौटौ"* करें। डच राजदूत ने तो यह बात स्वीकार कर ली और उसे आज्ञा मिली कि वह प्रति आठ वर्ष में एक बार सौ आदमियों को अपने साथ लेकर वहाँ आवे और उन सौ में से बीस आदमी राजदरबार में उसके साथ आ सकें। पर कौटौ न करनेवाले उद्दण्ड रूसियों पर इस प्रकार की सन्दिग्ध कृपा नहीं हुई। दूसरे सम्राट् कांगशी के शासनकाल में रूसियों ने अपनी पूर्वी सीमा बढ़ा ली और अमूर नदी के ऊपरी भाग में एलबेजिन के निकट अपनी किलेबन्दी कर ली। चीनी सम्राट् ने देखा कि यदि इस अवसर पर रूसियों को रोका न जायगा तो वे आगे चल कर प्रबल हो जायँगे और हमारे देश को हानि पहुँचावेंगे। इसलिए उसने अपनी सेना वहाँ भेजी जो उन

* चीनियों में यह प्रथा है कि जब वे देव-पूजन करते अथवा सम्राट् या किसी और बड़े के सामने उपस्थित होते हैं तो तीन बार आगे की ओर घुटनों के बल झुकते और तीनों बार अपना माथा जमीन पर टेकते हैं। इसी को कौटौ कहते हैं।—प० सम्पा०।

किलेबन्दियों को नष्ट करके और वहाँ के रूसी सैनिकों को कैद करके पेकिंग ले आई। सन् १६८९ में नरचिंस्क की जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि रूसी अमूर नदी के उत्तर में ही रहें और उसके दक्षिणी तटों की शान्ति भंग न करें। कांगशी की उदार सहनशीलता के कारण ईसाइयों को अनेक सुविधाएँ मिल गईं पर बाद में दो ईसाई सम्प्रदायवालों में परस्पर झगड़ा होने के कारण चीनी खटक गए। उन्होंने यह समझा कि यह झगड़ा यहाँवालों को भड़काने के लिए हुआ है। कांगशी की मृत्यु के उपरान्त राजदरबार में ईसाइयों का उतना आदर न रह गया। इसके उपरान्त वहाँ पहुँचनेवालों को कष्ट और हानि के अतिरिक्त और कुछ भी न मिला। सन् १७२७ में रूसी राजदूत काउन्ट सेबा व्लैडीलैविश और पुर्त्तगाली राजदूत डोन मिटेलो सोजा मेंजेस वहाँ पहुँचे। चीन के दरबार में जाने के समय विदेशी राजदूतों को जिन अदब-कायदों का ध्यान रखना पड़ता है, उनसे यह दोनों राजदूत अपना पीछा छुड़ाना चाहते थे; क्योंकि उनके पालन से वे अपने अपने शासकों की हेठी समझते थे। जेस्विट सम्प्रदाय के ईसाइयों को ही चीनी इस झगड़े की जड़ समझते थे इसलिए उन्हीं पर उनकी अप्रसन्नता भी बढ़ी। जेस्विट सम्प्रदाय के आए हुए कुछ लोगों से सम्राट् ने कहा भी था—"तुम लोग मुझ से कहते हो कि तुम्हारा धर्म्म मिथ्या नहीं है। मैं तुम्हारी बात का विश्वास करता हूँ। यदि मैं उसे झूठा समझता तो तुम्हारे गिरजे नष्ट करने और तुम्हें इस देश से मार भगाने से मुझे कौन रोक सकता था?......... पर यदि मैं अपने देश से बहुत से लामा तुम्हारे देश में धर्म्म-प्रचार के लिए भेज दूँ तो तुम लोग क्या कहोगे? उन लोगों का स्वागत तुम किस प्रकार करोगे?...............जिन लोगों को तुमने ईसाई बना लिया है वे तुम्हारे सिवा और किसी को नहीं मानते और आपत्ति के समय वे तुम्हारे सिवा और किसी की बात न सुनेंगे?" तात्पर्य्य यह कि मिशनरियों का मान न तो राजा के यहाँ हुआ और न प्रजा में। प्राचीन धार्म्मिक विश्वासों को भंग करने के लिए जो लोग बिना बुलाए और बिना सहानुभूति सम्पादित किए कहीं जाते हैं, साम्राज्य में थोड़ा सा उपद्रव ही, सब लोगों को उन पर कुपित कर देने के लिए यथेष्ट होता है। कियनलंग ने राजकार्य्य में सहायता देने के लिए जिन लोगों को आमन्त्रित किया था, वे भी मिशनरियों से प्रसन्न नहीं थे; और उन्हीं के कारण फ़ूकीन में ईसाइयों को कई बार तंग करने का प्रयत्न हुआ था।

इसी शासनकाल में सब से पहले सर्वाधिकार-प्राप्त अँगरेज़ी राजदूत को चीनी सम्राट् की सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा मिली। लार्ड मैकर्टनी को भली भाँति समझा दिया गया था कि जब तक उनके समान पद का कोई चीनी अधिकारी अँगरेज बादशाह की तसवीर के सामने "कौटौ" न करे तब तक तुम भी चीन-सम्राट् के सामने "कौटौ" न करना। जब कोई चीनी अधिकारी यह शर्त्त मानने के लिए तैयार न हुआ तो अँगरेज़ी दूत को भी कौटौ करने से छुटकारा मिल गया। लार्ड मैकर्टनी ने कोई व्यापारिक सुविधा प्राप्त न की। लार्ड महाशय चीनी भाषा नहीं जानते थे; इससे लाभ उठाकर उनकी नाव पर मन्दारिनों ने ऐसे चिह्न अंकित कर दिए थे जिनसे सूचित होता था कि अँगरेज़ों ने चीनियों की अधीनता स्वीकार करके, उस नाव पर लदी हुई चीजें करस्वरूप भेजी हैं। चीनियों के इस अपमान-जनक व्यवहार का कारण यह था कि वे यह समझते थे कि "विदेशी असभ्य" यहाँ आकर हम लोगों को व्यर्थ तंग करते हैं और हमें उनसे मिलता जुलता कुछ भी नहीं है। इसके परवर्त्ती शासन में मिशनरियों और विदेशियों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार नहीं हुआ। कियनलंग का पुत्र कियाकिंग अपने पिता की अपेक्षा अयोग्य था और लोगों से नियमित अभिवादन आदि कराने का बड़ा पाबन्द था। रूसी राजदूत काउन्ट गोलिकेन चीनी सम्राट् के सामने केवल कौटौ करने के लिए तैयार न होने के कारण

ही उलटे पैरों स्वदेश लौट गया था। अँगरेज़ी राजदूत लार्ड एमहर्स्ट को भी इसी कारण चीन से बिना सम्राट् से भेंट किए वापस आना पड़ा था।

(अपूर्ण।)

—:०:—

पैवन्द और कलम।

(लेखक—श्रीयुक्त हरिप्रसादजी पालधि बी० ए० काशी।)

श्री युत गङ्गाशङ्कर पंचोली महाशय ने मार्च १९१५ की नागरीप्रचारिणी पत्रिका में 'पैवन्द और कलम' शीर्षक एक लेख लिखा है जिसमें पाठकों के ज्ञातव्य बहुत सा विषय है; परन्तु इस लेख का कोई कोई अंश साफ़ नहीं है। यथा पृष्ठ २७४ में लिखा है:—

"हमारे देश के माली नारंगी आदि वृक्षों में उसी जाति के जुदा जुदा स्थान के वृक्षों के 'पैवन्द' वा 'आँख' चढ़ाकर संतरे आदि अनेक प्रकार के फल और मामूली देशी आम के वृक्षों में मालदह, लंगड़े आदि जाति के आमों की 'कलम' चढ़ा कर नये प्रकार वा स्वाद के आम उत्पन्न करते हैं"।

यह कथन सर्व्वतोभाव से ठीक नहीं है क्योंकि देशी आम पर लंगड़े की कलम चढ़ाने से जो वृक्ष तैयार होगा उसमें लंगड़ा आम फलेगा न कि किसी नये प्रकार का आम। इसलिए यह कहना कि "नये प्रकार वा स्वाद के आम उत्पन्न करते हैं" ठीक नहीं है।

अब प्रश्न यह हुआ कि जब नये प्रकार का आम पैदा नहीं होता तो कलम बाँधने की आवश्यकता ही क्या है? पाठकों को ज्ञात रहे कि बहुत से वृक्ष ऐसे हैं जो बीज से जम कर अपने असली भाव पर नहीं बने रहते। कारण यह है कि जब वृक्षों में फूल आता है तो पवन, मधुमक्षिका तथा अन्य प्रकार के कीट पतङ्गों के द्वारा पुंपराग एक प्रकार के वृक्षों के फूलों से दूसरे प्रकार के वृक्षों के फूलों में फैलता रहता है, जिससे इसका कोई निश्चय नहीं रह सकता कि लंगड़े आम के वृक्षों के फूलों में लंगड़ों का ही पुंपराग पहुँचा है। यही कारण है कि अच्छे से अच्छे आम की गुठली लगाने से जो वृक्ष पैदा हुआ हो उसका फल अति निकृष्ट भी हो सकता है। परन्तु लंगड़े आम की कलम में लंगड़ा ही फलता है, इसी लिए कलम लगाने की प्रथा चली है।

कलम जोड़ है और कोई जोड़दार वस्तु असली के समान दृढ़ नहीं हो सकती। यही कारण है कि कलमी वृक्ष बीजू के समान उत्तम और दीर्घजीवी नहीं होते। उनकी बाढ़ और फलत कम होती है। यद्यपि कलमी वृक्षों के फल असली वृक्षों के फल के सदृश ही होते हैं परन्तु वृक्षों की कमज़ोरी के कारण फल में कुछ आभ्यन्तरिक हेरफेर भी हो सकता है। यथा कभी बीज कम हो जाते हैं, कभी गुठली छोटी हो जाती है और कभी कभी रेशा भी कम हो जाता है। यद्यपि वृक्षों का कमज़ोर हो जाना और फलत की कमी दोष हैं तथापि अमरूद में बीज का कम हो जाना और आम की गुठली का छोटा होना लोगों को अधिक रुचिकर होता है, इसलिए भी कलमी वृक्ष लगाए जाते हैं। कलमी वृक्ष छोटे होते हैं इसलिए बीजू वृक्षों की अपेक्षा निकट निकट लगाए जा सकते हैं।

इस संसार का यह नियम है कि जीव अपने सजाति जीवों को पैदा करता है। ईश्वर ने फलों में बीज इसी लिए पैदा किए हैं कि उनसे सजातीय वृक्ष पैदा होते रहें। वृक्ष के अनुत्तम होने से फल के भी निकृष्ट होने की आशङ्का रहती है। परन्तु कभी कभी ऐसा होता है कि फलों की संख्या कम हो जाने के कारण फल बड़े हो जाते हैं। वृक्षों की कमज़ोरी से बीज भी कमज़ोर हो जाता है इसी लिए कलमी वृक्षों के फलों में बीज कम और छोटे होते हैं।

बहुत से वृक्ष ऐसे होते हैं जो बीज से प्रायः जमते ही नहीं; यदि जमे भी तो प्रायः फलते नहीं या बहुत दिनों में फलते हैं। ऐसे वृक्ष प्रायः

दूसरे देश से लाए हुए होते हैं और इस देश में केवल कलम ही से बढ़ाए जाते हैं। यथा गुलाब का वृक्ष, इस देश में केवल कलम ही से बढ़ाया जा सकता है, परन्तु ऐसा न समझना चाहिए कि गुलाब में बीज होते ही नहीं। यहाँ भी किसी किसी गुलाब में फल लगता है। यदि देखा जाय तो किसी किसी फल में बीज भी पड़ता होगा, और इन्हीं बीजों से सैकड़ों नये प्रकार के गुलाब निकले हैं।

कलम करके हम वृक्षों के ढंग को भी किसी परिमाण में बदल सकते हैं; अर्थात् उन्हें ऐसा बना सकते हैं कि ऊपर को अधिक बढ़ें अथवा चारों तरफ अधिक बढ़े परन्तु अधिक ऊँचे न हों।

फल के स्वाद में भी कलम की सहायता से कभी कभी हेर फेर किया जा सकता है, यथा मीठे नीबू के बीजू पर सन्तरे की कलम चढ़ाने से फल तो सन्तरा होता है परन्तु उसकी तुरशी कम हो जाती है। हमने स्वयं मीठे नीबू पर पंजाबी जंबीरी की कलम चढ़ी हुई देखी हैं। उसका फल देखने में जंबीरी का सा था परन्तु स्वाद मीठे नीबू का था। परन्तु आम के वृक्ष में हमने कोई हेर फेर नहीं देखा है। अलबत्ता यह देखा है कि किसी वृक्ष का फल बड़ा और किसी का छोटा होता है। यह कहना बहुत कठिन है कि यह भेद बीजू के कारण हुआ है या जमीन के गुण से। यह कहा जाता है कि बार बार बड़े आमों की गुठली से जमे हुए वृक्षों पर सफेदे की कलम बाँध कर मलीहाबादवालों ने सफेदे आम को बढ़ा लिया है।

हमने काश्मीर में बादाम, आड़ू और जंगली खूबानी पर, जिसको वहाँ हाड़ी कहते हैं खूबानी की कलम चढ़ाते देखा है। बादाम पर चढ़ी हुई कलमों में जो फल होता है उसकी गिरी भी मीठी होती है। आड़ू पर चढ़ी हुई कलमों में जो फल होता है वह बड़ा होता है और देखने में सुन्दर होता है परन्तु उसकी गिरी कड़ुई होती है। हाड़ी पर चढ़ी हुई कलमों का वृक्ष बड़ा होता है और उसमें फल अधिक लगते हैं परन्तु स्वाद में वह पहिले दो प्रकारों से घट कर होता है और उसकी गिरी भी कड़ुई होती है। अर्थात् इन तीनों प्रकारों के फलों में कुछ न कुछ विशेषत्व रहता ही है। विशेषत्व का कारण यह है कि बीजू यद्यपि एक ही जाति के थे परन्तु अलग अलग कुल के थे। एक बादाम पर था, दूसरा आड़ू पर था और तीसरा जंगली खूबानी पर था। यदि सब कलमें जंगली खूबानी पर ही होतीं तो फल में कुछ हेर फेर न होता। और यही बात संतरे में भी है। अर्थात् यदि संतरे की कलम संतरे ही के बीजू पर बाँधी जाय तो फल का स्वाद और रूप न बदलेगा।

सारांश यह निकला कि अपने ही कुल के बीजू पर कलम चढ़ाने से जो वृक्ष होगा उसका फल स्वाद इत्यादि में कलम के कुल का होगा और कलम चढ़ाने से किसी मिश्र जाति का फल नहीं निकलेगा; परन्तु यदि बीजू सजाति किन्तु भिन्न कुल का हो तो कलम के चढ़ाने से स्वाद और रूप में भेद पड़ सकता है पर फल उसी कुल का होता है जिस कुल की कलम है।

पाठक! हमारे इस लेख को श्रीयुत् गङ्गाशङ्कर पंचोली महाशय के लेख की टीका समझिए। इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु जब तक यह निश्चय न हो जाय कि पंचोलीजी अब इस विषय पर कुछ न लिखेंगे तब तक हमारा इस विषय में दखल देना ठीक नहीं है। आशा है कि पंचोलीजी इस विषय पर अभी लिखेंगे क्योंकि यह बड़ा ही उपयोगी विषय है।

—:o:—

गोस्वामी तुलसीदास जी का असली चित्र ।

भारत में बहुत ही थोड़े लोग होंगे जो महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी के नाम से परिचित न हों। गोस्वामीजी का काशी से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध था। उन्होंने अपने जीवन के अधिक दिन काशी में ही ही विताए थे। काशी में उनके प्रधानतः चार स्थान थे—१ असीघाट, २ गोपालमन्दिर के निकट, ३ प्रल्हादघाट और ४ संकटमोचन। इन्हीं स्थानों में प्रायः वे रहते थे। गोस्वामीजी पहले पहल जब काशी में आते तब प्रल्हादघाट पर पं० गंगाराम जोशी के घर ठहरते थे। यह वही स्थान है जहाँ स्वयं रामचन्द्रजी ने आकर चोरों से गोस्वामीजी के भण्डारे के धन की रक्षा की थी। पं० गंगारामजी से आपका बड़ा प्रेमसम्बन्ध था और उनके अर्पण किए हुए धन से ही गुसांई जी ने शेष स्थान तथा महावीरजी के बारह मन्दिर बनवाए थे। पं० गंगारामजी को यह धन राजघाट के क्षत्रिय गहमार राजा से प्रश्न बताने पर मिला था और वह प्रश्न गोस्वामी जी ने दावात कलम के अभाव में कत्थे से लिखी हुई 'रामशलाका' से निकाला था। उसी समय अर्थात् सं० १६५५ में गोस्वामीजी की एक तसवीर जहाँगीर बादशाह ने जयपुर के चित्रकार से बनवाई थी। वह तसवीर और रामशलाका बराबर पं० गंगाराम जोशीजी के यहाँ थी।

ग्रियर्सन साहब ने तुलसीदासजी के विषय में लिखे हुए अपने १८९३ के इंडियन एंटिक्वेरियन में और पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र ने अपनी रामायण के तिलक में इन बातों का उल्लेख किया है। परन्तु रामचरितमानस, (ना० प्र० सभा काशी से प्रकाशित) इण्डियन एंटिक्वेरियन, या पं० ज्वालाप्रसाद जी के तिलक में प्रह्लादघाट के सम्बन्ध में केवल इतना ही लिखा है कि तसवीर और रामाज्ञा एक ब्राह्मण के पास थी, अब वह खो गई है। इससे मालूम होता है कि उस ब्राह्मण का पूरा हाल शायद उन्हें नहीं मिला। उस ब्राह्मण के घर ग्रियर्सन साहब स्वयं गये थे और उन्होंने जहाँगीर की बनवाई हुई गुसांई जी की वह तसवीर प्रत्यक्ष देखी थी। गङ्गारामजी दो भाई थे। दूसरे भाई का नाम दौलतराम था। दोनों की मृत्यु १७ वीं सदी में हुई थी। उनके वंशजों में पं० गिरिवरव्यास हुए, जिनकी मृत्यु सं० १९५३ में हुई और इनके पास ही ग्रियर्सन साहब ने गुसांईजी की तसवीर देखी थी। इनकी मृत्यु के पीछे उनका उत्तराधिकारी मैं हुआ हूँ। मैं उनका भांजा हूँ। उक्त ग्रन्थकारों ने ब्राह्मण के पास रामाज्ञा के होने का उल्लेख किया है, वह असल में "रामाज्ञा" नहीं, किन्तु "रामशलाका" थी जो रामचन्द्र (मेरे बहनोई के भाई) और गंगाधर (मेरी मा की बुवा के पुत्र) के हाथ से सं० १९२०-२२ के करीब लुटेरों ने श्रीनाथ जी की यात्रा के समय उदयपुर के निकट लूट ली थी। उक्त महाशयों की मृत्यु हो गई है और उस रामशलाका की नकल मिरजापुरवासी पं० रामगुलामजी द्विवेदी के श्रोता मु० छगनलालजी के पास है। जहाँगीर की बनवाई गोस्वामीजी की तसवीर मेरे पास सुरक्षित है और उसे मैं जो देखना चाहें उन्हें दिखा सकता हूँ।

अब इस संसार में मेरा कोई नहीं है और मैं युवा होने पर भी विवाह कर गृहस्थी में फँसना नहीं चाहता। मेरा मन विरक्त सा बन गया है और रामकथा-वार्त्ता में ही अपना समय बिताना चाहता हूँ। जीविका निर्वाह के लिए मैंने फोटोग्राफी का काम सीखा है और आवश्यकता से अधिक पैसे के लिए मैं हाय हाय नहीं करता।

मुझ से कितने लोगों ने वह तसवीर माँगी, पर मेरी इच्छा उस तसवीर को अपनी सब सम्पत्ति अर्पण कर देने की है, इसलिए मैंने वह किसी को न दी। गोस्वामीजी के अन्य स्थान तो अच्छी दशा में हैं,

पर प्रह्लादघाट जो मूलस्थान है, दूसरे की मिलकियत होने के कारण जैसे का तैसा पड़ा है। दूसरे की अर्थात् मेरी ही वह सम्पत्ति है और अब वह सम्पत्ति मैं तुलसीदासजी को अर्पण करना चाहता हूँ।

मैं पुष्करना ब्राह्मण हूँ और मेरी इच्छा है कि निज का संगीन मकान गोसांईजी को अर्पण कर उसमें उनकी एक पाषाणमूर्त्ति उस तसवीर के साथ स्थापना कर दूँ, जिससे प्रह्लादघाट पर तुलसीदास जी का एक स्थिर स्मारक बन जाय और उनकी कीर्ति अपना सर्वस्व खर्च कर शेष न होने पावे।

मैं निर्धन हूँ। मेरे पास जो कुछ था, सो मैंने गोसांईजी के चरणों में अर्पण कर दिया है। पाषाण-मूर्त्ति की स्थापना के लिए कम से कम एक या डेढ़ हजार रुपया चाहिए। उनके जुटाने में मैं किसी के पास याचना नहीं करता। इसके लिए मैंने एक ऐसा उपाय निकाला है जिससे लोगों को कष्ट न पहुँच कर लाभ भी हो और काम भी बन जाय।

मेरे एक विद्वान् मित्र ने गोस्वामीजी की सुन्दर जीवनी लिख कर तुलसीस्मारक की सहायता की है। उस जीवनी, शत पंच चौपाई और गोस्वामीजी की प्राचीन तसवीर को मैंने छपवा लिया है। इन्हीं तीनों वस्तुओं की बिक्री के लाभ से मैं तुलसीस्मारक बनवाऊँगा। तुलसीदासजी की असल मूर्त्ति और उत्तम चरित का संग्रह देश के हर एक व्यक्ति के निकट रहना अत्यावश्यक है। किसी जाति, धर्म अथवा समाज का मनुष्य क्यों न हो, तुलसीदासजी से सब का समान सम्बन्ध है। आशा है इस पुस्तक को मँगवा कर लोग परम-पवित्र काशी क्षेत्र में राष्ट्र के भगवद्भक्त महापुरुष का क्षयीस्मारक बनवाने में मेरा हाथ बँटावेंगे। मूल्य १॥) मात्र। केवल फोटो का मूल्य १)

विनीत—निवेदक

रणछोड़लाल व्यास,

मन्त्री—तुलसीस्मारक कार्य्यालय।

प्रह्लादघाट, बनारस सिटी।

—:०:—

साधारण अधिवेशन।

शनिवार तारीख २४ अप्रैल १९१५ सन्ध्या के ५½ बजे

स्थान सभाभवन।

(१) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव तथा पंडित सांवलजी नागर के अनुमोदन पर मुंशी भगवानदीन सभापति चुने गये।

(२) गत अधिवेशन (ता० २७ फरवरी १९१५) का कार्य्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) सभासद होने के लिए निम्न लिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किये गए।

१ बाबू हरिहरनाथ बी० ए०, १३२ मध्यमेश्वर, काशी १॥)
२ पण्डित नारायण आचार्य, बीबीहटिया, काशी १॥)
३ बाबू प्रतापसिंह स्टेट इञ्जीनियर, डूंगरपुर १॥)
४ बाबू प्रियतमदास आनन्द, हैडमास्टर पिएडे स्कूल-डूंगरपुर १॥)
५ महन्त निर्मलाचार्य, श्रीसेतराम मन्दिर, ऋणमोचन घाट, अयोध्या ३)
६ बाबू शिमंगलप्रसाद, सराय गोवर्द्धन, काशी १॥)
७ पण्डित क्षेत्रपाल शर्म्मा, सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा १॥)
८ बाबू नन्दकिशोर मुखोपाध्याय, नं० ७ नया महादेव, काशी १॥)
९ श्रीमान ठाकुर बेनीमाधवसिंह साहित्य-दिवाकर, मलासा पो० मोहम्मद पुर जि० कानपुर ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद बनाये जायँ।

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

१ बाबू प्रयागलाल गुरु—पटना
२ बाबू भैवरलाल श्रेष्ठी—झालारपाटन
३ बाबू रघुनाथप्रसाद कपूर—हाथरस
४ सी० जी० हनुमानसिंह वर्म्मा—माइसूर

(५) मंत्री ने निम्नलिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दी।

(१) बाबू कन्हैयालाल रमईपट्टी—मिर्जापुर (२) बाबू श्रीगोविन्ददास रायबरैली और (३) चौधरी हरिश्चन्द्र मुज़फ्फरनगर।

सभा ने इसपर शोक प्रकट किया।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं—

श्रीमती यशोदादेवी सम्पादिका स्त्रीधर्म्मशिक्षक प्रयाग

सच्चापतिप्रेम
नारीनीतिशिक्षा
महिलाहस्तभूषण
गर्भरक्षा
सच्ची सहेली
आदर्श हिन्दूविधवा
शिशुरक्षाविधान
जीवनरक्षा
महिलाजीवनसर्वस्व
सन्तति सुधार
वीर पत्नी संयोगिता
पत्नी पत्र दर्पण
छात्री विधान
आदर्श बालिका
महिला भजन बाटिका
सुखी कुटुम्ब
सन्तान पालन
घर का वैद्य
शास्त्रशिक्षा
बनिता पत्र दर्पण भाग १

बाबू भगवानदास हालना, अभ्युदय प्रेस प्रयाग

रामायणी कथा

पण्डित शिवनारायण मिश्र-प्रताप कार्य्यालय-कानपुर

युद्ध की कहानियाँ

पण्डित नीलमणि शर्म्मा—चन्द्रसूर राजिम—रायपुर

छतीसगढ़ी दानलीला

पं० दलीपदत्तशर्म्मा उपाध्याय-महाविद्यालय ज्वालापुर

संस्कृत लोक

डाक्टर महेन्दुलाल गर्ग

पाचन क्रिया विकार

पण्डित शोभाराम धेनु सेवक लखना दौन—सिवनी

भरतचरित्रामृत
कपिलाक्रन्दन

पण्डित सोमेश्वर दत्त शुक्ल सीतापुर

जर्मन जासूस
तरलतरंग
आनन्दमय जीवन

पण्डित श्यामसुन्दराचार्य वैश्य—काशी

रसायन सार भाग १
ओंकार चित्र व्याख्या

पण्डित गौरीकान्त ओझा—काशी

बृहत् कुंभपर्व व्यवस्था

पण्डित मंगलदेव साधु—आगरा

साधुमहात्माओं की सेवा में आर्य जाति की पुकार

पण्डित शिवकुमारजी—जगन्नाथपुर गोरखपुर

प्रचलित संध्या या प्राणायाम से हानि और सत्य संध्या का प्रचार

ग्वालियर दरबार

तिब्बे हैवानात

बाबू मक्खनलाल अग्रवाल नागरीप्रचारककार्यालयदिल्ली

अमरदत्त
कुमारी

पण्डित गोबर्द्धन बी० ए० दिल्ली

मां और बच्चा

श्रीमान् ठाकुर साहब गुमानसिंहजी लछमनपुरा जि० मेवाड़

समान बतीसी
चतुर चिन्तामणि
पंचरत्न प्रश्नोत्तर मालिका
श्रीरामगीता
रामरत्नमाला

मंत्री प्रियतमधर्म सभा शिकारपुर (सिंध)

नशाइनि खे नसीहत (सिंधभाषा)
पतिव्रत धर्म्म

औदुम्बर प्रेस—काशी
स्त्रीसुधार का दिव्य रसामृत
बाबू लक्ष्मीनारायण गुप्त काशी
कृषिदर्पण
कृषिशिक्षा
वृक्षरोपणप्रणाली चार भाग
चश्मा
अपूर्व संन्यासी
मधुरमंजरी
भारतेन्दुजी का जीवन-चरित
यंत्र चिन्तामणि
श्रीगुरुतत्व
विरहतरंगिणी
ध्रुवलीला
बंगला भाषा
सारनित्य क्रिया
पण्डित बदरीनाथ पांडेय ओंकार टोला—काशी
गीतामृत तरंगिणी
कर्मविपाक संहिता
पद्यपंचाशिका
नीतिरत्नमाला
स्तोत्र-संग्रह
खरीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त
कुसुम-संग्रह
मोतीमहल भाग १—२
वीरेन्द्रवीर
नरेन्द्रमोहिनी भाग १—२
खूनी कलाई भाग २
सूरशिरोमणि
राजदुलारी
ज़हर का प्याला
हिन्दी कुरान
कुरानादर्श

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:o:—

प्रबन्धकारिणी समिति

शनिवार ता० २४ अप्रैल १९१५ सन्ध्या के ६ बजे
स्थान-सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (तारीख २९ जनवरी १९१५) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) "ग्रामों की सफाई और तन्दुरुस्ती" के विषय में आये हुए लेखों पर पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० और डाकृर शोभाराम की यह सम्मति उपस्थित की गई कि कोई लेख स्वर्णपदक के योग्य नहीं है।

निश्चय हुआ कि इनमें से किसी लेखक को पदक नहीं दिया जा सकता।

(३) ग्रामों की सफाई तन्दुरुस्ती के विषय में पंडित श्रीलाल उपाध्याय का लेख उपस्थित किया गया जिसे उन्होंने नियत समय के उपरान्त भेज कर प्रार्थना की थी कि सभा यदि उचित समझे तो उसके लिए मेडल दे अथवा योंही उसे प्रकाशित कर दे।

निश्चय हुआ कि यह लेख भी पंडित रामनारायण मिश्र और डाकृर शोभाराम के पास सम्मति के लिए भेजा जाय।

(४) लाला सीताराम बी० ए० का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने एक ग्रन्थ में दुर्गेशनन्दनी कादम्बरी और उथेलो से कुछ अंशों को उद्धृत करने की आज्ञा माँगी थी।

निश्चय हुआ कि लाला सीताराम जी को सूचना दी जाय कि दुर्गेशनन्दनी और कादम्बरी का कापीराइट सभा ने बेच डाला है और उथेलो से वे जिस अंश को चाहें उसे सहर्ष उद्धृत कर सकते हैं।

(५) तिरहुत एजुकेशन सोसायटी का यह पत्र उपस्थित किया गया कि "हिन्दू विवाह आदर्श" पर सर्वोत्तम नाटक लिखनेवाले को उन्होंने ५०) रुपए का स्वर्णपदक देना निश्चय किया

है। अतः इस सम्बन्ध में उनके पास जो नाटक आवें उनकी परीक्षा क्या इस सभा द्वारा हो सकती है ?

निश्चय हुआ कि सभा की सम्मति में यह उत्तम होगा कि इन नाटकों की परीक्षा तिरहुत एजुकेशन सोसायटी के द्वारा ही हो।

(६) बुलन्दशहर की नागरीप्रचारिणी सभा का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा की वार्षिक रिपोर्ट में भारतवर्ष की सब नागरीप्रचारिणी सभाओं की सूची प्रकाशित हुआ करे।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय। बुलन्दशहर की नागरीप्रचारिणीसभा को लिखा जाय कि जितनी सभाओं का पता वे लगा सकें उनकी नामावली सभा के पास भेज दें और नागरीप्रचारिणी पत्रिका में भी इस विषय में एक विज्ञापन प्रकाशित कर दिया जाय।

(७) हिन्दी साहित्यसम्मेलन के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने नागरीप्रचारिणी पत्रिका से "इतिहास" शीर्षक लेख को पुस्तकाकार प्रकाशित करने की अनुमति माँगी थी।

निश्चय हुआ कि उन्हें इस लेख को प्रकाशित करने की अनुमति दी जाय।

(८) मौलवी रमज़ान उपनाम पोथीमियाँ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे हिन्दी की हस्तलिखित पुरानी पोथियों द्वारा बराबर सभा की सेवा करते हैं अतः उन्हें सभा के पुस्तकालय से देखने के लिए पुस्तकें दी जाया करें और इसके लिए उनसे कोई चन्दा न लिया जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और एक बार में एक पुस्तक उन्हें दी जाया करे।

(९) हिन्दी शब्दसागर के सहकारी सम्पादक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा के मासिक वेतन में ५) रुपए की वृद्धि करने के सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दरदासजी का पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह मंत्री की सम्मति के सहित आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(१०) मनोरंजन पुस्तकमाला की छपाई के सम्बन्ध में लीडर प्रेस का ११ फरवरी का पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह भी मंत्री की सम्मति के सहित आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(११) सन् १९१५ की ग्वालियर की हिन्दी हस्तलिपि परीक्षा के पर्चे उपस्थित किये गये।

निश्चय हुआ कि इनकी परीक्षा के लिए निम्नलिखित सज्जनों की सब-कमेटी बना दी जाय अर्थात् पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए०, बाबू मुरारीदास और बाबू अमीरसिंह।

(१२) आगरे के बाबू वृन्दावनलाल वर्म्मा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे इस सभा द्वारा उस लड़की को ६) रु० का एक पदक दिया चाहते हैं जो हिन्दी मिडिल परीक्षा में हिन्दी भाषा में सब से अधिक नम्बर पावे।

निश्चय हुआ कि उनके इच्छानुसार सभा द्वारा यह मेडल दिया जा सकता है पर इसके लिए १०) रु० से कम का मेडल ठीक नहीं होगा। यदि वे केवल ६) रु० ही व्यय किया चाहते हैं तो उत्तम होगा कि वे उसे नगद दे दें।

(१३) वेतनवृद्धि के लिए भरोस कहार का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह आगामी वर्ष के बजट के साथ उपस्थित किया जाय।

(१४) पंडित केदारनाथ पाठक का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि महाराणा प्रताप नाटक का जो नया संस्करण सभा द्वारा प्रकाशित होनेवाला है उसमें कई एक सुधार होने आवश्यक हैं। अतः इसके लिए कुछ विद्वानों की एक कमेटी बना दी जाय और उनकी

सम्मति के अनुसार आवश्यक संशोधन करने के उपरान्त दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जाय।

निश्चय हुआ कि इस पुस्तक में आवश्यक सुधार करने के लिए प्रयाग के लाला सीताराम बी० ए०, पंडित माधव शुक्ल, पंडित गोविन्द शास्त्री दुग्वेकर, पंडित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० और पंडित रामचन्द्र शुक्ल की सब-कमेटी बना दी जाय।

(१५) संयुक्त प्रदेश के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर का २० मार्च का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पूछा था कि हिन्दी-पुस्तकों की खोज के लिए सभा ४८०) रु० वार्षिक वेतन पर जो ट्रेवेलिंग एजेण्ट नियत किया चाहती है वह किस योग्यता का होगा। साथ ही इस पत्र के उत्तर का ड्राफ्ट भी इस प्रस्ताव के सहित उपस्थित किया गया कि यदि हिन्दी-पुस्तकों की खोज के लिए गवर्नमेंट ३०००) की वार्षिक सहायता दे कि जिससे एक विद्वान् निरीक्षक वेतन पर नियत किया जा सके जो अपना सारा समय इस कार्य्य में लगावे तो सभा इस कार्य्य में फुटकर व्यय के लिये ५००) रुपया का वार्षिक व्यय देना स्वीकार करे।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय और ड्राफ्ट के अनुसार डाइरेक्टर साहब को उत्तर भेज दिया जाय।

(१६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—